अध्याय–4

वाद्यों की एतिहासिकता एंव वाद्य वर्गीकरण संगीत रत्नाकर के संदर्भ में

संगीत की उत्पत्ति वेदों द्वारा मानी गयी है। संगीत का आधार सामवेद है, जिसमें ऋग्वेद की ही ऋचाओं को गेय रूप प्रस्तुत किया गया है, क्योंकि वैदिक काल में इन्हीं ऋचाओं का उच्चरण एक लयबद्ध क्रम में गेय पदों में प्रयोग किया जाता था। इसी लय व स्वर बद्धता से संगीत का विस्तार होता गया, इन्हीं में रस की आवश्यकता व भावों की अभिव्यक्ति के आधार पर ही वाद्यों का विकास होता गया। संगीत को पूर्ण तब ही माना जाता है, जब उसमें रंजकता उत्पन्न करने की शक्ति हो। इस रंजकता की खोज द्वारा ही वाद्यों की उत्पत्ति संभव हो सकी। मानव सभ्यता के साथ–साथ ही संगीत का उद्गम स्वीकारा जाता है तथा उसी के साथ ही वाद्यों का प्रयोग भी मनुष्य की चेतना का ही उदाहरण है। संगीत का मूल व प्राण नाद है। मानव जब आरम्भिक अवस्था में विभिन्न प्रकार की ध्वनियों के परिचित हुआ व अपनी चेतना द्वारा उस ध्वनि के विभिन्न प्रयोगों को सीखा और उन्हीं ध्वनियों का अनुसरण करते हुए वाद्यों का निर्माण किया।

गीत, वाद्य तथा नृत्य इन तीनों कलाओं के योग को संगीत कहा जाता है, इससे तात्पर्य यह है कि इन तीनों कलाओं को संगीत के अन्तर्गत माना जाता है। इन तीनों तत्वों के स्थुल अध्ययन से प्राप्त होता है कि इन तीनों का मुख्य आधार स्वर तथा लय है, जो नाद व गति के संशोधित रूप है।[(1)] स्वर का मुख्य आधार नाद है। नाद को दो रूपों में अनुभव किया जाता है आहत तथा अनाहत। आहत नाद की उत्पत्ति किसी वस्तु के आघात या संघर्षण से उत्पन्न होती है और अनाहत नाद सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। गायन के अन्तर्गत नाद रूप की उत्पत्ति मानव कंठ द्वारा की जाती है, तथा वादन में काष्ठ, वंश, तन्त्री, चर्म आदि सांगीतिक वाद्यों द्वारा नाद रूप की साधाना होती है।

इस प्रकार नाद संगीत का आधार है। मानव सदैव ही अपनी भावनाओं को व्यक्त करने हेतु संगीत का उपयोग करता रहा है। संगीत रचना में विचार एवम् भाव केवल शब्दों के द्वारा ही व्यक्त नहीं हेते, अपितु स्वरों द्वारा भी नादात्मक स्फुटीकरण होती है। इस प्रकार वाद्यों में

(1) भारतीय संगीत वाद्य/मिश्र लाल मणि/पृ–8

भी किसी प्रकार की भाषा का उपयोग न होते हुए, भी नादात्मक ध्वनियों के द्वारा मनुष्य भावनाओं को व्यक्त करने में सक्षम है। गीत, वाद्य तथा नृत्य के माध्यम से समाज में आनंद का प्रर्दुभाव अनंत काल से ही होता चला आ रहा है। संगीत की इन समस्त विधाओं के अन्तर्गत यह सभी कलाएं स्वावलंबी रूप में अस्तित्व रखती है। नृत्य से उत्तम वाद्य को तथा वाद्य से उचित गायन को माना जाता रहा है। मानव के अंतःकरण अर्थात् चित्त की मनोवृति की सूक्ष्मतम प्रस्तुतिकरण संगीत की तीनों विधाओं अर्थात् गायन, वादन तथा नृत्य के माध्यम से सहजता से प्रस्तुत किया जा सकता है। गायन के माध्यम से प्रस्तुत होने वाले रसों की अभिव्यक्ति में वाद्य तथा नृत्य सहायक सिद्ध होते है। गायन की उत्पत्ति का केन्द्र मानव कंठ अर्थात् मानव शरीर है, जिस कारण इसे ''गात्रवीणा'' के रूप में भी सम्बोधित किया जाता है।

संगीत में रंजकता उत्पन्न करने हेतु, वाद्य–वादन की प्रणाली आदि काल से ही विद्यमान है। मानव चित्त के विलक्षण आकृति व चेष्टा को अभिव्यंजन करने हेतु पृथक–पृथक वाद्यों का उपयोग होता रहा है। नाट्य परम्परा में भी किसी भी राष्ट्र के सांगीतिक वाद्य उस राष्ट्र की संस्कृति में एक महत्वपूर्ण व अहम भूमिका का स्थान निर्वाह करते है। किसी भी संगीतमय ध्वनि की उत्पत्ति करने वाली वस्तु को वाद्य की संज्ञा दी जा सकती है।

4.1 वाद्यों का उद्भव

संगीत के विषय में ऐसा मत है, कि इस विद्या का उद्भव ब्रह्मा द्वारा हुआ। तत्पश्चात् यह भगवान शिव शंकर के होते हुए, माता सरस्वती को प्राप्त हुयी, जिन्होनें नारद जी को संगीत की शिक्षा प्रदान की और नारद जी के बाद पृथ्वी पर सामान्य जनमानस को इसका ज्ञान प्राप्त हुआ। इस प्रकार संगीत में रंजकता व रस भावाव्यक्ति हेतु वाद्यों की उत्पत्ति होने लगी। प्रत्येक वाद्यों का सम्बन्ध देव आदि के साथ माना जाता है, जिसके संदर्भ में वर्णित है कि–

ततं वांद्यतु देवानां गंधर्वाणां च शौषिरम्।
आनंद्ध राक्षसानांतु किन्नाराणां घंन विदुः।।
निजावतारे गोविन्द सर्वमेवान क्षितौ।।[2]

(2) पं० शुभांकर कृत संगीत दामोदर / गुरीनाथ शास्त्री / पृ०–51

अर्थात्– वाद्यों का संबन्ध वर्णित करते हुए कहा है, कि देवताओं के लिए तत्, गंधर्वों को सुषिर वाद्यों से समद्ध, राक्षसों का सम्बन्ध अवनद्ध वाद्यों से तथा किन्नरों के संदर्भ में घन वाद्यों को वर्णित किया गया है व यह भी वर्णन किया है, कि भगवान श्री कृष्ण द्वारा ही समस्त वाद्यों को पृथ्वी लोक पर लाया गया।

जैन ग्रन्थ जंबुद्वीबपण्णाति के अनुसार ''तूर्यांग'' नामक कल्पवृक्ष था। इसी प्रकार संगीत रत्नाकर में वर्णित है कि–

वाद्यं दक्षाध्वर द्वेगत्यागाय शंभुना।
चक्रे कौतुकतो नंदी स्वाति तुंबरू नारदैः।।

अर्थात्– भगवान शिव श्म्भू द्वारा जब दक्ष द्वारा किए जा रहे यज्ञ को ध्वंस या नष्ट करने से हुए क्षोभ की समाप्ती हेतु नारद, नन्दी, स्वाति, तम्बुरू द्वारा वाद्यों का प्रयोग किया गया व उनकों वर्णित किया गया अर्थात् दक्ष यज्ञ के विध्वंस के समय जब शिव क्रोधित थे, तब उनके क्रोध को शान्त करने के लिए स्वाति, नारद और नन्दी आदि मुनियों द्वारा वाद्यों का निर्माण किया गया।

आदिकाल से ही गीत, वाद्य तथा नृत्य के माध्यम द्वारा ही आनन्द की प्राप्ती की जाती थी व यही मनोरंजन के मुख्य साधन के रूप में प्रयोग किया जाता था। इन तीनों स्वतन्त्र सांगीतिक विधाओं का महत्व एवम् प्रयोग संगीत कला में सम्मिलित रहा है। संगीत में सदैव ही नृत्य से उत्तम वाद्य तथा वाद्य से उत्तम गीत को माना जाता है। मन की सूक्ष्म से सूक्ष्म स्थिति को गीत, वाद्य तथा नृत्य अर्थात संगीत के माध्यम से प्रकट किया जा सकता है। गीत के द्वारा प्रकट होने वाले रसों की अभिव्यक्ति वाद्य तथा नृत्य सहायक सिद्ध होते है तथा गीत कंठ अर्थात् शरीर के माध्यम से प्रस्तुत होता है, जिस कारण शरीर को गात्र वीणा कहा जाता है तथा शरीर आकारात्मक क्रिया अर्थात् नृत्य का रूप धारण करती है। गीत में रंग, रस, भाव भरने हेतु, उसमें वाद्य–वादन की परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। मन के विलक्षण भावों को प्रकट करने के लिए अलग–अलग वाद्यों का प्रयोग किया जाता है। हिन्दी व्याकरण के अनुसार 'वाद्य' 'वाद्य' शब्द का अर्थ होता है– वादन के योग्य अर्थात् वाद्नीय। यह संस्कृत भाषा का एक शब्द है, जो संज्ञावाचक है तथा लिंग के अनुसार नपुंसक लिंग

की श्रेणी का शब्द है। इसे शुद्ध भाषा में वाद्यम कहा जाता है।(3) वाद्य शब्द की उत्पत्ति 'वद्' धातु के अर्न्तगत 'णिच' नामक प्रत्यय लगने पर हुयी, जिसे 'वाद्' पढ़ा जाता था। कालान्तर में यत् प्रत्यय जोड़नें पर वाद्य शब्द का उद्भव हुआ, जिसका अर्थ होता है– बोलना।

इस कारण कहा जाता है, जो बोलता है– वह वाद्य है अर्थात् 'वदतीति वाद्यम्'।(4) वाद्य के वादन पर जब ध्वनि की उत्पत्ति होती है, उसके द्वारा गायन व उस ध्वनि के काल खण्ड का आभास होता है तथा एकाग्रचित्त होकर सुनने पर स्वरों के गुल्म में शब्द व गीत की अनुभति होती है, जो गायन तथा नृत्य में प्रयोग होती है। वाद्यों की अनुपस्थिति में शब्द भाव–विहीन प्रतीत होते है। वाद्यों के संदर्भ में पर्याय शब्द प्राप्त होते है, जो कि वाद्य, वादित्र तथा आतोद्य कहे गये है। वाद्यों के विषय में इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि वाद्यों का जन्म आवश्यकता अनुसार होता गया, क्योंकि प्रत्येक अविष्कार आवश्यकता के अनुसार ही होता है। गायन, नृत्य, नाट्य सभी के लिए वाद्य प्राण के समान है। वाद्य द्वारा ही गायन, नृत्य तथा नाट्य में रंजकता का प्रादुर्भव होता है, जो श्रोता के चित्त को सुख की अनुभूति करता है। मानव के निरन्तर होते विकास द्वारा ही वाद्यों का निर्माण होता गया और विकास आज भी जारी है। एस० एन० टैगोर द्वारा भी अपनी पुस्तक Universal History of music में पिनाकी वीणा को समस्त तन्त्री वाद्यों का पिता कहा गया है, जिससे यह ज्ञात होता है, कि वाद्यों की उत्पत्ति का पहला चरण की खोज धनुष की प्रत्यंचा के ढ़ीले करने और कसने से स्वरों की अनुभूति हुयी।

इस प्रकार कई प्रकार के छोटे–छोटे परिस्थिति जन्य व आवश्यकता जन्य अविष्कार संगीत के क्षेत्र में होते गए। इस प्रकार देवों आदि के द्वारा भी वाद्यों के निर्माण का वर्णन प्राप्त होता है, जैसे समुद्र मंथन से प्राप्त होने बहुमुल्य वस्तुओं में वीणा भी थी–

वीणा नाम समुद्रोत्थितंरत्नम्।।(5)

---

(3) अमरकोश/अमर सिंह/नाट्यवर्ग/प्रथम काण्ड़/पंक्ति–369/पृ०–36
(4) अमरकोश/अमर सिंह/नाट्यवर्ग/प्रथम काण्ड़/पंक्ति–369–380/पृ०–36–37
(5) भास रचित नाटक–चारूदत्त/अंक–3

अर्थात्– यह भी कथा प्राप्त होती है, कि त्रिपुरासुर के वध के पश्चात् ब्रह्मा द्वारा अवनद्ध वाद्य को निर्मित किया गया, जिसे मिट्टी के ढ़ाँचें से बनाया गया व उसे मृदंग कहा और उसका प्रथम वादन गणेश जी द्वारा किया गया।**(6)**

इस प्रकार गणेश जी मृदंग वादन, माता सरस्वती वीणा वादन, भगवान शिव के हाथ में ड़मरू, भगवान विष्णु द्वारा शंख को व श्रीकृष्ण वंशीधर के नाम से ही जाने जाते है। शिवपुराण के अनुसार पावर्ती जी को सोता देख शिव जी द्वारा उनकी मुद्रा स्वरूप वीणा का निर्माण किया गया, जिसे रूद्रवीणा नाम से पुकारा गया, जिससे भैरव, हिन्डोल, मेघ, दीपक तथा राग श्री जैसे पांच रागों का निर्माण हुआ और पार्वती जी के मुख से छठा राग कौशिक की उत्पत्ति हुयी।**(7)** सुभद्रा चौधरी के अनुसार स्वरों की उत्पत्ति सर्वप्रथम कंठ द्वारा मानी गयी है।

यं यं गाता स्वरं गच्छेत् तमातोद्यैः प्रयोजयेत् संगीत संचयनन।(8)

समस्त वाद्यों द्वारा उन्हीं स्वरों का अनुरसण हो, जिनका प्रयोग गायन के स्वरों में होता है। इसे प्रकार वाद्यों की उत्पत्ति के साक्ष्य प्राप्त होते है। जिसमें मानव संस्कृति के इतिहास के साथ ही वाद्यों का विकास होता गया और साथ ही देवी–देवताओं के साथ भी वाद्यों की उत्पत्ति की जानकारी प्राप्त होती है।

4.2 वाद्य वर्गीकरण

वाद्य वर्गीकरण के अर्थ को जानने की चेष्टा स्वरूप इसके अर्थ को जानने का प्रयास किया जा रहा है, क्योंकि वर्गीकरण का तात्पर्य किसी भी वस्तु या किसी भी अधिक संख्या वाले तत्वों को वर्गों में विभाजित कर उसका अध्ययन करना है, क्योंकि अधिक संख्या में उपलब्ध सामग्री को एकत्र रूप में समझ पाना एक कठिन कार्य है तथा वर्ग का अर्थ है, भागों में बाँट उसको इकाई रूप में समझाना। इस प्रकार वाद्यों के संदर्भ में वर्ग विभाजित कर उनके प्रयोगों व लक्षणों को समझना चहिए। पूर्वाचार्यों व प्राचीन विद्वानों द्वारा ज्ञान व अनुभव के आधार पर ही पंचमहाभूतों का वर्णन किया, जिनके द्वारा ही मानव मस्तिष्क में ज्ञान का सृजन

(6) Music of India/Pople
(7) भारतीय संगीत वाद्य / मिश्र लाल मणि / पृ–25
(8) सुभद्रा चौधरी / संगीत रत्नाकर–पं० शारंगदेव / वाद्याध्याय / श्लोक–121

होता है, जिसे प्रपंच की संज्ञा दी गयी है। डॉ० वासुदेव शास्त्री का कथन है, कि ज्ञानेन्द्रियों द्वारा मनुष्य, जो कुछ भी महसूस करता है या अनुभव करता है। उसे ही प्रपंच समझना चाहिए, जैसे कर्णो द्वारा की जाने वाली अनुभूति आकाश, स्पर्श द्वारा होने वाली अनुभूति वायु, चक्षुओं अर्थात् आँखों से देखने वाली अनुभूति तेजस, जीभ की अनुभूति अप तथा नाक या नासिका की अनुभूति पृथ्वी है।[(9)] इससे नाद का संबध कानों से बताया गया है क्योंकि अन्य इन्द्रियों की अनुपस्थिति में मात्र कानों की सहायता से नाद को पहचाना जा सकता है व कानों द्वारा ही दिशा व दूरी का भी ज्ञान होता है। ॐ को ही विद्वानों द्वारा नादब्रह्म स्वीकारा गया है। नाद द्वारा श्रुति की उत्पत्ति, श्रुतियों के आधार पर स्वरों की उत्पत्ति, स्वरों के आधार पर शब्दों को निमार्ण व शब्दों के माध्यम से पदों की रचना सम्भव होती है।

इस प्रकार सभी एक–दूसरे पर आश्रित है तथा संगीत की मुख्य विशेषता के रूप में स्वर को देखा जाता है। नाद का वर्णन करते हुए, नाद दो प्रकार के बताए गए है, अनाहत नाद व आहत नाद। जिस नाद की उत्पत्ति ध्यान ऊर्जा द्वारा स्वतः मन से होती है अर्थात् जो स्वंमभू है, वह अनाहत नाद है तथा जिस नाद की उत्पत्ति किसी माध्यम के द्वारा हो अर्थात् घर्षण, टकराव आदि से हो, वह आहत नाद है। अनाहत आत्म ऊर्जा को ब्रह्म में लीन करता है व आहत नाद रंजकता प्रदान करता है।

संगीत पारिजात में वर्णित है कि–

आहतस्तु द्वितीयोऽसौ वाद्येष्वाद्यातकर्म्मण।।
तेन गीतस्वरोत्पत्तिः स नादो जयते भुवि।।[(10)]

अर्थात्– आहत नाद उसे कहा गया है, जिसके आर्न्तगत वाद्य यन्त्रों पर आहत करने से सांगीतिक ध्वनि का संचरण होता हो और उस सांगीतिक ध्वनि से स्वरों का उद्भव होता हो व इस प्रकार के नाद की पृथ्वी पर सदैव जय अर्थात् सदैव के लिए विराजमान है।

इसी प्रकार दामोदर पं० द्वारा वर्णित है कि –

स नादस्त्वादतो लोके रंजकों भव भंजकः।

(9) संगीत शास्त्र/शास्त्री के०वासुदेव/पृ०–8
(10) संगीत पारिजात– पं० अहोबल/पं०कालिन्द/पृ०–11

श्रुत्यादि द्वारतस्तस्मात्तदुत्पत्तिनिरूप्यते।।

अर्थात्– जीवन का समस्त रंजक व भवभंजक आहत नाद है अर्थात संगीत मनुष्य के जीवन को परोक्ष तथा प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। सांगीतिक रंजकता चित्त को शान्ति, सुख व संतोषपूर्ण स्फूर्ति प्रदान करती है।

सोऽव्याहतः पञ्चविधां नादस्तु परिकीर्तितः
नखः वायुज–चर्माणि लोटशरीर जास्तथा।।
नखं वीणादयः प्रोक्तं वंशाद्या वायुपुरकः
चर्माणि च मृदगांया लोहास्तालादयस्तथा।
देह नादने ते युक्ता नादाः पंचविद्याः स्मृताः।।[11]

अर्थात्– आहत नाद के पाँच भेंद माने गए है– नखज, वायुज, चर्मज, लोहज तथा शरीरज। इस प्रकार वीणा आदि वाद्य नखज, बांसुरी आदि वायुज, मृदंग इत्यादि वाद्यों के लिए चर्मज झांझ आदि जैसे लोहे से निर्मित वाद्यों के लिए लोहज तथा अन्त में मानव कंठ को भी एक मानते हुए उसे शरीरज नामक आहत नाद के द्वारा उत्पन्न बताया गया है। नारदीय शिक्षा तथा संगीत चूड़ामणि में भी इन पाँचों को पंचमहा वाद्य स्वीकारा गया है।

भरतमुनि तथा दत्तिल द्वारा वाद्यों की संख्या चार मानी गयी है, जिन्हें तत्, अवनद्ध, घन व सुषिर के रूप में वर्णित किया गया है। गात्र वीणा का वर्णन भरतमुनि द्वारा किया गया है, परन्तु वाद्यों के वर्गीकरण के अर्न्तगत उसका वर्णन नहीं किया गया है और वाद्य वर्गीकरण चार ही श्रेणी में विभजित किया गया है।

तत् चैवावन्द्धं च घनं सुषिरमेव च।
चतुविधं तु विज्ञेयभातोद्यं लक्षणान्वितम्।।
ततं तन्त्रीकृंत ज्ञेयमवनद्धं तु पौष्करम्।
घनं तातस्तु विज्ञेयः सुषिरो वंश उच्चते।।[12]

अर्थात्–वाद्य व आतोद्य चार भेदों में विभाजित है– तत्, अवनद्ध, घन और सुषिर, जिसके अर्न्तगत तन्त्री वाद्यों को जैसे वीणा आदि को तत् वाद्यों में, अवनद्ध वाद्य वह है, जिन्हें पौष्कर

---

(11) संगीत मकरंद / नारद / श्लोक–7–9
(12) भरतकृत–नाट्यशास्त्र / अनुवादक–शास्त्री बाबूलाल शुक्ल शास्त्री / पृ०–28 / श्लोक–1–2

भी कहा गया व जो चर्म द्वारा मढ़ें जाते है। ताल देने व जो कांस्य आदि के बने वाद्य है, उन्हें घन वाद्यों के श्रेणी में स्थान दिया है तथा सुषिर वाद्य अर्थात् जो फूंक या वायु के माध्यम से स्वर उत्पत्ति करें, वह इस श्रेणी के अन्तर्गत आते है।

नाट्यशास्त्र में वाद्यों के चारों भेदों के संकलित रूप को आतोद्य कहा गया है व बाल्मीकि रामायण में इन्हें तूर्य की संज्ञा दी गयी है। आतोद्य व तूर्य दो अर्थानुसार समान है, जिसका अर्थ है, आघात, तड़ित या पीटकर वादित होने वाले वाद्य आतोद्य या तूर्य के शब्द के प्रयोग को कुछ विद्वानों द्वारा घन तथा अवनद्ध वाद्यों के संबंध में उचित माना है, परन्तु तत् व सुषिर के विषय में तर्कसंगत नहीं स्वीकारते तथा कुछ विद्वानों द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि नखज के अर्न्तगत नाखुनों द्वारा जो प्रहार किया जाता है अर्थात् उसे अंगुलियों व कोण के द्वारा बजाया जाता है, परन्तु सुषिर में किसी भी प्रकार के तर्क में आतोद्य को स्वीकार नहीं किया गया है। इस प्रकार भरतमुनि द्वारा किए गए, वाद्य वर्गीकरण को ही सर्वमान्य स्वीकारा गया है, जिसके अर्न्तगत तत्, अवनद्ध, घन तथा सुषिर ही माने जाते है।

शोधार्थी द्वारा वाद्य वर्गीकरण को इस प्रकार समझा गया है, कि आरम्भिक अवस्था में मनुष्य पूर्णतः प्रकृति पर आश्रित था व उसी में ही संगीत की अनुभूति कर पानी की कल–कल, चिड़ियों की चहचहाहट, पत्थरों की ध्वनि तथा मनुष्य स्वंय शिकारी होने के कारण धनुष आदि के निर्माण में उत्पन्न होने वाली विभिन्न ध्वनियों व टंकार आदि के माध्यम से सांगीतिक ध्वनियों का अनुभव करता था और सभ्यता व संस्कृति के विकास के साथ समाज विकसित हुआ और संगीत भी विकसित हुआ व वेद से वैदिककाल तक चलते हुए, निरन्तर विकास में वाद्य भी चार श्रेणियों में शुद्ध रूप से परिष्कृत होते गए। इस प्रकार ऋग्वेद में दुन्दुभि, नाड़ी, पिंग, वाण आदि वाद्यों का वर्णन प्राप्त होता है। विकास की इस निरन्तरता के अर्न्तगत वाद्य अपने स्वर, बनावट, आकार–प्रकार आदि के आधार पर वर्गीकृत होते गए। वैदिक कालीन संगीत में सामगान की संगत के साथ ताल दर्शन हेतु दुन्दुभि नामक चर्म वाद्य का वर्णन प्राप्त होता है। ऋग्वेद के अर्न्तगत वाणस्य सप्तधातुरज्जिनः नामक शततंत्री वीणा का वर्णन प्राप्त होता है।[13] भरतमुनि से लेकर पं० शारंगदेव तक के वर्गीकरण के इतिहास में चार श्रेणियों में ही वाद्यों को वर्गीकृत किया गया है, जिनमें तत्, अवनद्ध, घन तथा सुषिर को ही

(13) ऋग्वेद / मंडल–10 / सूक्त–32 / मंत्र–4

स्थान दिया गया है। इस आधार को ही सर्वमान्य स्वीकृति प्राप्त हुयी है। मनुष्य एक परिवर्तनशील प्राणी है, जो सतत् चल रहे विकास के अर्न्तगत विकसित हो रहा है। इस परिवर्तन के अर्न्तगत वर्गीकरण के क्षेत्र में भी दो परिर्वतन परिलक्षित हुए है, जिसमें से एक वित्त शब्द का प्रयोग किया जाता है, जिसे तानसेन द्वारा अवनद्ध के स्थान पर प्रयोग किया गया। तानसने द्वारा संगीत का आधार संगीत रत्नाकर को ही माना गया है, परन्तु तानसेन द्वारा तत्, वित्त, घन व सुषिर ही स्वीकारा गया है।[(14)] तानसेन द्वारा अवनद्ध शब्द का प्रयोग किसी भी रचना में प्राप्त नहीं होता है व अवनद्ध के स्थान पर वित्त का ही प्रयोग मिलता है। तानसेन से पहले संगीतचूडामणि में भी अवनद्ध के स्थान पर वित्त शब्द ही प्रयोग में लाया गया है।

ततं च विततं, घनं सुषिरमेव च।
गानं चैव तु पैचैतत् पंचशब्द प्रकीर्तिता।।
तत् च तान्त्रिंत विद्यात् तिंत् मुखवादनम्।
घनं च कास्य तालादि् सुषिंर वायुपूरितम।।[(15)]

प्रस्तुत ग्रन्थ में वित्त शब्द का परिलक्षित होना यह संकेत प्रस्तुत करता है, कि उस काल के विद्वानों तथा आचार्यों पर पाली साहित्य का काफी प्रभाव था, क्योंकि वित्त पाली भाषा का शब्द है। जिसमें तुरिय शब्द प्राप्त होता है, जिसका प्रयोग वृन्दवादन के लिए किया गया है तथा त्त को अतत्, अवनद्ध को वित्त से सम्बोधित किया गया है तथा गमक द्वारा अपनी कवित्त योजना के अर्न्तगत तत् के साथ अवनद्ध का प्रयोग सटीक नहीं प्रतीत होता है और सामान्य बोल–चाल के अर्न्तगत इस शब्द का प्रयोग होने लगा, जो जायसी रचित पदमावत में भी देखा गया है।

तत्, वित्त सिखर घन तारा।
पाँचों सबद होई झनकारा।।[(16)]

परन्तु उन्नसवीं शताब्दीं से ही विद्वानों द्वारा इस विषय में एक अन्य मत और जोड़ा गया, जिसमें वाद्य वर्गीकरण में तत्, वित्त, अवनद्ध, घन तथा सुषिर स्वीकार कर इसे पाँच श्रेणियों

(14) तानसेन कृत–संगीतसार / मिश्र लालमणि / पृ०–14
(15) संगीतचूडामणि / बडौदा संस्करण / पृ०–68
(16) पदमावत / मलिक मोहम्मद जायसी / पृ०–687

में विभाजित किया और वित्त वाद्य को तत् वाद्यों को तत् वाद्यों के ही अर्न्तगत तन्त्री वाद्यों की श्रेणी स्वीकारा गया, जिनमें कोण आदि से बजने वाले वाद्य तत् वाद्य तथा गज से बजाए जाने वाले वाद्य वित्त कहे। इस मत का समर्थन अतिया बेगम तथा ओ० गोस्वामी द्वारा भी स्वीकारा गया है तथा वित्त का अर्थ झुका या खिंचा होता है तो उसे ढ़का होना भी होता है, जिसे मध्यकालीन के कुछ ग्रन्थकारों द्वारा अवनद्ध वाद्य के संबंध में प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार विद्वानों का एक वर्ग तत्, वित्त, घन व सुषिर नामक चार वर्गीकरण में वाद्यों की श्रेणी को स्वीकार है, जिसमें तत् वह वाद्य है जिसमें तन्त्री वाद्य, वित्त अथवा अवनद्ध वाद्य जो चर्म अच्छादित है, घन वाद्य कास्यं आदि निर्मित तथा सुषिर वह जिसमें वायु के मध्यम से स्वरों की उत्पत्ति सम्भव होती है। इसी प्रकार विद्वानों के दूसरे वर्ग द्वारा तत्, वित्त, अवनद्ध, घन व सुषिर को स्वीकार किया गया है। डॉ० सुभद्र चौधरी द्वारा वाद्यों को चतुर्विधि वाद्य वर्गीकरण के अर्न्तगत तत् तथा सुषिर वाद्यों का प्रयोग व सम्बन्ध स्वर उत्पत्ति से अवनद्ध वाद्यों को उपरंजन उत्पन्न करने व घन वाद्यों का प्रयोग समय माप या नाप के सम्बन्ध में ही स्वीकारते है तथा वित्त के अर्न्तगत अवनद्ध को ही स्वीकारा है। इस प्रकार वाद्यों में मख्य रूप से चार ही प्रकार स्वीकार किए गए है, जिसमें तत्, अवनद्ध, घन व सुषिर। यदि वर्तमान वाद्य वर्गीकरण पर ध्यान दिया जाए, तो एक नवीन श्रेणी का भी दृष्टिपात होता है, जो इलेक्ट्रिक गिटार, सितार, हर्मोनियम, तानपुरा, तबला इत्यादि सम्मलित है।

4.2.1 तत् वाद्य– तत् वाद्यों को कई अन्य नामों से सम्बन्धित किया गया है, तन्तु वाद्य, तन्त्रीकृतातोद्य तथा तन्त्री वाद्य अर्थात् सभी संबोधनों का अर्थ एक ही है। वह वाद्य जिसमें तन्त्रियों का प्रयोग हुआ हो, जो तार से युक्त है व वादन विधी के लिए अंगुलियों का प्रयोग लकडी का बना श्लाव या पत्थर के कोण का प्रयोग हो तथा इन सभी के अलावा नाखुनों द्वारा भी प्रचीन काल में वादन किया जाता था तथा वर्तमान में मिज़राब आदि का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार स्वरों की उत्पत्ति के लिए विभिन्न प्रकार से तन्त्री वाद्यों के वादन की क्रिया अपनी सुविधानुसार की जाती है। पं० लालमणि मिश्र जी द्वारा कहा गया है, कि प्राचीन काल में मिज़राब की अनुपस्थिति में नाखुनों द्वारा ही स्वर उत्पत्ति की जाती थी।[(17)] इस प्रकार ज्ञात होता है, कि आरम्भिक मनुष्यों द्वारा विकास के चलते तन्त्री वाद्यों का निर्माण

(17) मिश्र पं० लालमणि / भारतीय संगीत वाद्य / पृ०–24

किया। आरम्भ में मनुष्य खेती व आखेट द्वारा अपना भरण–पोषण करता था और उसमें प्रयुक्त होने वाले धनुष द्वारा ही तन्त्री वाद्यों के विकास की बात विद्वानों द्वारा स्वीकृत की गयी है और कहा गया है कि धनुष की टंकार से जिस ध्वनि की प्राप्ती हुयी, वही वीणा का विकसित रूप बनी। इस धनुष की प्रत्यंचा पर ही नाखुन, अंगुली आदि से प्रहार कर स्वर की प्राप्ती हुयी व डोरी के ढीले व कसे होने की दशा में स्वरों के ऊँचे–नीचें का परिवर्तन का ज्ञान होता गया। वैदिककाल तक यह वाद्य पूर्ण रूप से विकसित हो गया और तन्त्री वाद्य वीणा के स्वरूप को प्राप्त कर प्रसिद्ध हो गया व प्राचीन से वर्तमान तक समस्त वीणा सर्वाधिक प्रसिद्ध वाद्य के रूप में जानी जाती है।

तत् वाद्यों के लक्षण कुछ इस प्रकार बताए गए है–

→ अंगुलियों के माध्यम से छेड़ कर वादित होने वाले वाद्यों का वर्ग जिसमें स्वरमण्ड़ल, तानपुरा इत्यादि सम्मिलित है।

→ इसके पश्चात् त्रिकोण अर्थात् मिज़राब, कोण आदि से बजाए जाने वाले वाद्य इस श्रेणी के अर्न्तगत सितार, रूद्रवीणा, गोट्टुवाद्यम् तथा सरोद आदि वाद्यों को रखा गया है।

→ सारंगी, दिलरूबा, सरंदा, इसराज जैसे वाद्यों का वादन गज या कमानी आदि की सहायता से किया जाता है।

→ वाद्यों की एक श्रेणी वह स्वीकारी गयी है जिसमें किसी लकड़ी या कास्यं की बनी छड़ी के माध्यम से बजाया जाता है।

इस प्रकार वादन के आधार पर चार वर्ग प्राप्त होते है**(18)** तथा इसी प्रकार आकार व बनावट के आधार पर भी वर्णन प्राप्त होता है–

→ सितार, इसराज, दिलरूबा आदि वाद्यों को लम्बी गर्दन के वाद्यों की श्रेणी रखा जाता है।

→ छोटी गर्दन के वाद्यो में रावण–हत्था, सारंगी, वायलिन इत्यादि सम्मिलित है।

→ तुम्बे वाले वाद्यों में तम्बूरा, सितार आदि को स्थान दिया गया है।

---

(18) मिश्र लालमणि / भारतीय संगीत वाद्य / पृ०–29

→ कुछ वाद्यों जैसे सारंगी, दिलरूबा, इसराज आदि वाद्यों की तबली को चमड़े से मढ़ा जाता है।

तत् वाद्यों की श्रेणी में उन वाद्यों के वादन के लक्षणों का भी वर्णन प्राप्त होता है, जैसे गोद में खड़ाकर, लेटाकर या कन्धें के सहारे से वादन किया जाता है, जिनमें इसराज, सारंगी आदि व सामने गोद में रखकर वादन किए जाने वाले वाद्य भी अलग है, जैसे संतूर, कानून इत्यादि। इस प्रकार तन्त्री वाद्यों की कई श्रेणियाँ प्राप्त होती है।

4.2.2 अवनद्ध वाद्य– संगीत में लय व गति के मापन के लिए ताल वाद्यों का प्रयोग किया जाता है, जिसे अवनद्ध की संज्ञा दी जाती है तथा अवनद्ध वाद्य वह वाद्य है जिनका मुख चमड़े से अच्छादित होता है व वह अन्दर से पोले होते है, इन्हें वित्त वाद्य भी कहा गया है। परन्तु भरत मुनि निदिष्ट नाट्यशास्त्र में इन वाद्यों को अवनद्ध की संज्ञा दी गयी है।

यावन्ति चर्मवद्धनि ह्यतोहानिद्धिजोत्तमा।
तानि त्रिपुष्कराद्यानि ह्यवनद्धमिति स्मृतम्।।[(19)]

वह सभी वाद्य जिनका मुख चमड़े से मढ़ा हो वह भरत मुनि द्वारा त्रिपुष्कर कहे गए है। यह सभी ताल वाद्य के रूप में प्रयुक्त होते है। इनके वादन हेतु इन्हें हाथ या लकडी के माध्यम से आघात कर वादन किया जाता है, जो किसी न किसी स्वर में निबद्ध होता है ताकि वह स्वर वाद्यों के साथ संगत में प्रयोग किए जा सके और रंजकता का सृजन संभव हो सके जैसे दुन्दुभि, भेरी पटह आदि भरत द्वारा इन्हें पौष्कर वाद्य कहा गया है। कुछ विद्वानों द्वारा इन्हें वित्त की संज्ञा दी गयी है तथा तत् कवत्त व सुषिर तीन श्रेणियां स्वीकार की गयी है व वित्त की संज्ञा तानसेन कृत संगीत सार से भी प्राप्त होता है व संगीत चूडामणि में भी वर्णन प्राप्त होता है। तत् के साथ वित्त की एक तुक के अर्न्तगत प्रयोग होने की बात विद्वानों द्वारा कही गयी है। वादन के अनुसार अवनद्ध वाद्यों के लक्षण इस प्रकार है कि

→ हाथों के पंजों द्वारा वादन करने की श्रेणी को वर्णित किया गया है, जिनमें नाल, ढोलक, मृदंग, पखावज इत्यादि सम्मिलित है।

---

(19) भरतमुनि कृत–नाट्यशास्त्र/शास्त्री बाबूलाल शुक्ल/श्लोक–/पृ०–

→ कुछ वाद्य इस प्रकार के प्राप्त होते है, जिनमें एक हाथ से ही अंगुलियों की सहायता से वादन किया जाता है, जिसमें खंजरी, दायरा इत्यादि वाद्य सम्मिलित है।

→ कुछ वाद्यों को शंकु द्वारा भी बजाया जाता है, जैसे नगाढ़ा, धौसा, दमामा इत्यादि।

→ कुछ वाद्यों में एक तरफ हाथ व एक तरफ ड़ंड़ी से आघात कर वादन किया जाता है।

इस प्रकार अवनद्ध वाद्यों के अर्न्तगत वादन लक्षण के अनुसार वाद्यों को रखा गया है। इसी प्रकार बनावट के अनुसार भी वर्णन प्राप्त होता है, जिसमें अन्दर से खोखले व मुख को चमड़े से अच्छादित होते है, साथ ही आकार के आधार पर गोपुच्छा, यवाकृति, हरितकि तथा समान मुख वाले वाद्यों की श्रेणियां प्राप्त होती है। इस प्रकार वादन विधि व आकार के आधार पर भी अवनद्ध वाद्य की श्रेणी में उपश्रेणियां प्राप्त होती है।

4.2.3 सुषिर वाद्य– सुषिर वाद्यों का उद्‌भव प्रकृति द्वारा ही सर्वप्रथम प्राप्त होता है, जिसमें वायु के वेग द्वारा प्राचीन काल में जंगलों में बाँस आदि के द्वारा स्वर की उत्पत्ति मनुष्य द्वारा अनुभूति की गयी। वैदिक काल में मंत्रों के उच्चारण आदि में शंख, शृत्रे जैसे वाद्यों का प्रयोग देखने को मिलता है। इस श्रेणी में ध्वनि निकासी के वाद्यों में दो प्रकार के वाद्य होते है। एक मुँह द्वारा फुँक कर वादित होते है तथा एक कृतिम माध्यम द्वारा वादन किया जाता है। मुँह द्वारा फूँक कर बजाए जाने वाले वाद्यों में बाँसुरि, सुन्दरी, शहनाई इत्यादि सुषिर वाद्य सम्मिलित है तथा कृतिम माध्यम के अर्न्तगत हार्मोनियम, प्यानों आदि वाद्य आते है। सुषिर वाद्यों के विषय में तथ्य यह भी प्राप्त होता है कि प्रकृति द्वारा पतले, पोले बाँस पर वायु के वेग से जब स्वरों की उत्पत्ति हुयी, उसे मानव द्वारा सुना व समझा गया और उस बाँस में अन्य छेंदकर अलग–अलग स्वर प्राप्ति के सिद्धान्तों को समझा गया, जिसके अनुरूप बाँसुरी, शहनाई जैसे वाद्यों का निर्माण सम्भव हो सका।[20]

वादन के आधार पर फूँक व कृतिम हवा वाले वाद्य प्राप्त होते है तथा बनावट के आधार पर बाँसुरी के आकार वाला पत्तीदार वाद्य जिनमें शहनाई आदि सम्मिलित है तथा पत्ती के साथ चाभी के योग से निर्मित वाद्य जैसे सेक्सोफोन आदि व भारतीय बैन्ड़ के अर्न्तगत और भी कई प्रकार के वाद्य प्राप्त होते है, जिनकी लम्बी व घुमावदार गर्दन होती है, जिसमें ट्रम्पेट

(20) संगीत बोध/पराजपे श्रीधर शरदचंद/पृ०–133

आदि शामिल है तथा हार्मानियम, प्यानों आदि वाद्य रीड वाले वाद्य भी इस श्रेणी में प्राप्त होते है।

4.2.4 घन वाद्य– दो वस्तुओं के आपस में टकराने से ध्वनि की प्राप्ती होती है। जब उन्हें किसी निश्चित स्वर व लय को ध्यान में रखकर वादन किया जाता है तो वह ध्वनि सांगीतिक ध्वनि के रूप में प्रयोग होती है। घन वाद्यों के अर्न्तगत दो वस्तुओं के आपस में आघात कर स्वर प्राप्त किया जाता है, जिसका प्रयोग काल मापन की क्रिया के अर्न्तगत भी किया जाता है।

डॉ० लालमणि मिश्र द्वारा इनका विवरण प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि मंजरी, कंठताल आदि किसी वस्तु के परस्पर भागों को आपस में आघात कर ध्वनि की प्राप्ती की जाती है तथा एक वह श्रेणी है, जिसमें धातु के बने किसी वाद्य पर लकड़ी के माध्यम से आघात किया जाता है, जैसे घन्टा आदि तथा अन्त में वह श्रेणी भी सम्मिलित है, जिसमें घुघंरू, झुनझुना आदि वाद्य सम्मिलित है। इसके अर्न्तगत कांस्य आदि धातु की बनी पोली वस्तु या वाद्य में कंकड़ आदि को डालकर हिलाने पर स्वर प्राप्ति होती है। प्राचीन व वैदिककाल में घन वाद्यों का वर्णन प्राप्त नहीं होता है क्योंकि उस काल में धातु के अविष्कार की जानकारी प्राप्त नहीं होती है। वाद्य शब्द की उत्पत्ति सस्कृत भाषा के ''वद्'' धातु से उत्पन्न मानी जाती है। जिसका अर्थ होता है, बोलना। अतः वाद्य का तात्पर्य उस यन्त्र से है, जिससे ध्वनि उत्पन्न होती है, अर्थात् जिसके द्वारा स्वर की अभिव्यक्ति हो सके। अदिकाल से ही मानव अपनी भावनाओं की अभिव्यंजना के लिए संगीत अर्थात् गीत, वाद्य तथा नृत्य को आधार बनाता है आरम्भ से ही मनुष्य अपने विचारों एवं भावनाओं की अभिव्यंजना के अनेक प्रयत्न करता आ रहा है। अलग–अलग कलाओं तथा भाषा का उद्धगम् इन्हीं सतत परिश्रम का प्रभाव रहा है। भारत का समाज व संस्कृति धार्मिक मान्यताओं से जुड़ा हुआ है।

भारतीय यदि संस्कृति या किसी भी पक्ष के तथ्यों का अध्ययन करते है, तो उस तथ्य को सर्वप्रथम धार्मिक पक्ष के साथ जोड़ेगें भारत की इस विचारधारा से संगीत भी अछूता न रह सका है। इन्हीं बातों को देखते हुए संगीत के विद्वानों व शास्त्रकारों ने संगीत को नाद–वेद की संज्ञा दी है तथा संगीत को सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी द्वारा उत्पन्न माना है। नाद रूपी महासागर के समान ही भारतीय संगीत वाद्यों का इतिहास भी अतिप्राचीन है अर्थात् संगीत की तरह

भारतीय संगीत वाद्यों की संख्या भी असीम है। भारतीय वाद्यों की अतिप्राचीन तथा सशक्त प्रणाली के प्राचीनता का अनुमान भारतीय ग्रन्थों तथा हजारों वर्ष प्राचीन प्रचलित वाद्यों के द्वारा कर सकते है। प्राचीनकाल में भी भारतीय संगीत के वाद्यों की विशेषता अत्यन्त अलंकृत, वैज्ञानिक एवं सशक्त है।

संगीत वाद्यों का वर्णन सर्वप्रथम वैदिक ग्रंथों तथा वैदिक काल में प्राप्त होता है। हालांकि प्राचीन ग्रंथों में हमें वाद्यों का वर्णन काफी संक्षेप में प्राप्त होता है, फिर भी इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है, कि इस काल में वाद्यों का विस्तार हो चुका था। वेदों में सामवेद को संगीत का वेद कहा जाता है, उस काल के गायन को सामगान का जाता था। सामगान की संगति के लिए तथा ताल देने के लिए दुदुंभी नामक चर्म वाद्य का प्रयोग किया जाता था। इसके अतिरिक्त अन्य चर्म वाद्यों का वर्णन भी वैदिक काल में प्राप्त होता है, जैसे द्रव्यकेतुमत विश्रगोप्य। इसके अतिरिक्त वैदिक काल में तंत्री वाद्यों का उल्लेख हमें ''हिरण्यकेशी सूत्र'' में प्राप्त होता है, जिसके मौलिक तथ्य पर ताल्लुका वीणा, काण्ड वीणा, चिच्छोरा, आलापु वीणा, कपिशीर्ष वीणा की प्रतिष्ठा कर सकते है।[21] इस प्रकार सभी वाद्यों को आघाटी कहा गया है। रामायण में वीणा तथा मृदंग के साथ नृत्य की संगति होने का वर्णन प्राप्त होता है।

हनुमान जी द्वारा जिस समय सीता जी को खोजने के प्रयास में वह इधर–उधर विचरण कर रहे थे, उस समय रावण के महल में उन्हें संगीत कक्ष दिखा जिसमें अलग–अलग संगीत एक वाद्य मिले, जिसमें विपंची, मत्तकोकिला वीणा, वेणु, दुन्दुभि, पटह, मृदंग, पणव, ड़िमड़िम, मड्डुक, मुरज, चेलिया, आडंबर आदि वाद्यों का वर्णन प्राप्त होता है।[22] एक कथा के अनुसार शिव प्रदोष में शिवजी द्वारा नृत्य किया गया था, उस समय लक्ष्मीजी द्वारा गायन, विष्णु जी द्वारा मृदंग, सरस्वती मां द्वारा वीणा का वादन तथा इंद्रदेव वेणु वादन और ब्रह्माजी द्वारा करतार वादन करने का वर्णन प्राप्त होता है।[23] इसी प्रकार महाभारत में भी अनेक संगीत वाद्यों का वर्णन प्राप्त होता है, जिनमें अनेक वाद्यों के संयुक्त वादन ''तूर्य'' का वर्णन हुआ है। व्यास जी द्वारा महाभारत में उपयोग हुए वाद्यों का उल्लेख किया गया है, जिसके

---

(21) मण्ड़ल–10 मण्ड़ल / सूक्त–146 / मंत्र–002
(22) सुन्दरकाण्ड / श्लोक–37–44
(23) मिश्र पं० लालमणि / भारतीय संगीत वाद्य / पृ०–14 / चित्र–36

अंतर्गत तंत्री वाद्यों में वल्लकी, तुम्ब, कच्छपी, महती वीणा तथा सुषिर वाद्यों में वेणू, गोमुख, गोविशानिक, अवनद्ध वाद्यों के अंतर्गत प्रणव, भेरी, मृदंग, दुन्दुभि, मुरज, पुष्कर, झर्झर, का वर्णन प्राप्त होता है तथा वर्तमान में कर्नाटक संगीत का घटम वादय के सदृश्य उपघटि तथा कुंभ का वर्णन मिलता है। महाभारत का समय पाश्चात्य् विद्वानों द्वारा 400 ईसा पूर्व से 200 ईसा पूर्व कहा गया है, किन्तु भारतीय विद्वानों द्वारा महाभारत का काल आज से 5000 वर्ष पूर्व का कहा गया है। नारद रचित ग्रंथ नारदीय शिक्षा जिसकी रचना प्रथम शताब्दी में मानी जाती है, इस ग्रन्थ में संगीत के सरल स्वरूप का वर्णन प्राप्त होता है। नारद जी ने वाद्यों को तीन भागों में विभाजित है– तत्, अवनद्ध और घन।

''नादतदमते चार्मण तान्त्रिक घनं चोति त्रिधा वाद्यलक्षणन्।।''

इसके पश्चात् संगीत का ग्रन्थ नाट्यशास्त्र जिसको पंचम वेद की संज्ञा दी गई है, इसके इनके रचयिता भरत मुनि द्वारा वाद्यों को चार भागों में विभक्त किया गया है तत्, सुषिर, घन तथा अवनद्ध।

तंत चैवावनद्धं च घने सुषिरमेव च ।
चतुर्विध तु विज्ञेयमातोद्यं लक्षणान्वितम्।।(24)

4.3 संगीत रत्नाकर वर्णित वाद्याध्याय

इस तरह भरतमुनि के बाद के आचार्य व संगीत विद्वानों ने वाद्यों को चार भागों में विभाजित किया है। नाट्यशास्त्र के पश्चात् संगीत का सबसे महत्वपूर्ण मध्यकालीन ग्रंथ ''संगीत रत्नाकर'' को कहा गया है। जिसकी रचना संगीत ग्रंथकार पं० शारंगदेव जी द्वारा तेरहवीं शताब्दी में की गयी थी। शोधार्थी का अपना विषय संगीत रत्नाकर के वाद्याध्याय पर आधारित है, अतः शोधार्थी द्वारा संगीत रत्नाकर के वाद्य का वर्गीकरण पर विवेचन करने का प्रयास किया जा रहा है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की आवश्यकतानुसार वाद्याध्याय वर्णित वाद्यों के वर्गीकरण को प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है। वाद्याध्याय के अर्न्तगत 1221 श्लाकों को पं० शारंगदेव जी द्वारा वर्णित किया गया है।

(24) शुक्ल शास्त्री बाबू लाल/नाट्यशास्त्र/भरत मुनि/अध्याय–6/श्लोक–27

श्लोक–1–2 वाद्याध्याय का आरम्भ पं० शारंगदेव जी द्वारा मंगलाचरण अर्थात् महादेव शिव जी को स्मरण करते हुए किया है, महादेव की स्तुति कुछ इस प्रकार से की है– जिस ईश्वर ने इस संसार की रचना अपनी माया द्वारा की और जो परम आनन्द के ही रूप है, उन महादेव को अपने हृदय के कमलों द्वारा स्मरण करते हुए नमन करता हुँ। इसके पश्चात् वर्णित किया है कि जिन धातुओं व वृत्तियों द्वारा अद्भुत प्रकार की वाणियों का उद्भव संभव होता है, उन तत्वों के स्वामी शिव की उपासना करता हुँ, स्तुति करता हुँ।

4.3.1 वाद्य वर्गीकरण

श्लोक–3–4 मंगलाचरण के श्लोकों के पश्चात् वाद्यों के निरूपण के प्रयोजन को पं० शारंगदेव जी द्वारा कहा गया है। इस क्रम में वर्णन प्रस्तुत करते हुए कहा है कि वाद्य चार प्रकार के होते है, जो गीत उत्पन्न होता है, उसके माप तथा उसे रंजित करने में प्रयोग किया जाता है। इसी कारण पं० शारंगदेव जी द्वारा गीत के पश्चात् वाद्यों के निरूपण व वर्गीकरण को प्रस्तुत किया गया है। वाद्यों के चार प्रकार तत्, सुषिर, अवनद्ध तथा घन को माना गया है। तत् तथा सुषिर वाद्यों का उपयोग स्वर वाद्यों के रूप में होता है, जिसके माध्यम से श्रुति आदि को प्रस्तुत किया जाता है तथा अन्य दो अर्थात् अवनद्ध तथा घन के द्वारा रंजकता तथा काल मापन का कार्य सम्भव होता है।

श्लोक–5–6 तत् वाद्य तार युक्त वाद्य होते है, जिन्हें तन्त्री के द्वारा बजाया जाता है। छिद्रों से युक्त तथा जो वायु के वेग से बजाया जाता है, वह सुषिर वाद्य कहे है। वह वाद्य जिनका मुख चमड़े के द्वारा मढ़ा हो या अक्षादित किया गया है, उसे अवनद्ध वाद्य कहा जाता है तथा अन्त में घन वाद्यों का वर्णन करते हुए, पं० शारंगदेव जी द्वारा कहा गया है कि वह वाद्य जिनके आपस में टकराने के द्वारा स्वर की उत्पत्ति हो वह घन वाद्य की श्रेणी में आते है।

श्लोक–7–10 इसके पश्चात् पं० शारंगदेव जी द्वारा तत् वाद्यों के भेदों को कहा है। तत् वाद्यों के अर्न्तगत दो प्रकार से वर्णन किया है। एक वह जो श्रुति के संदर्भ में प्रयोग किए जाता है तथा अन्य स्वर की प्रस्तुती हेतु प्रयोग किया जाता है। श्रुति आदि के संदर्भ में प्रयुक्त होने वाली वीणा को सारणा को निरूपित करने हेतु प्रयोग की जाती है तथा अन्य स्वर वीणा कही है, जिसके माध्यम से संगीतज्ञ स्वरों का प्रस्तुतीकरण करते है। पं० शारंगदेव

जी द्वारा स्वरवीणा के अर्न्तगत एकतन्त्री, नकुल, त्रितन्त्री, चित्रा, विपंचि, मत्तकोकिला, आलापनी, किन्नरी, पिनाकी तथा निःशक वीणा जैसे दस वीणाओं का वर्णन प्रस्तुत किया है।

श्लोक–11–15 इसके पश्चात् सुषिर वाद्यों का वर्णन प्राप्त होता है, जिसके अर्न्तगत वंश, पाव, पाविका, मुरली, मधुकरी, काहला, तुण्डुकिनी, चुक्का श्रृंग, तथा शंख जैसे दस सुषिर वाद्यों का विस्तार पूर्वाक वर्णन कहा है। अवनद्ध वाद्यों के अर्न्तगत तेइस वाद्यों का वर्णन प्राप्त होता है, जिसमें पटह, मर्दल, हुडुक्का, करटा, घट, घडस, ढ़वस, ढ़क्का, कुडुक्का, कुडुवा, रंजा, डमरू, डक्का, डक्कुली, सेल्लुका, झल्लरी, भाण, त्रिवली, दुन्दुभी, भेरी, निःसाण तथा तुम्बका को विस्तार से कहा है। घन वाद्य आठ बताए है, जिनके नाम ताल, कास्यताल, घण्टा, क्षुद्रघन्टिका, जयघंटा, कम्रा, शुक्ति तथा पट्टा। इस प्रकार सोढल जी के पुत्र पं० शारंगदेव जी द्वारा घन वाद्यों को वर्णित किया गया है।

श्लोक–15–18 इस प्रकार चारों वाद्यों के वर्णन के पश्चात् चारों वाद्यों का प्रयोग के आधार पर वर्णन प्रस्तुत किया है। वाद्यों को जब नृत्त या गीत के बिना प्रयोग किया जाता है। उस वाद्य प्रयोग को शुष्क कहा जाता है। वाद्यों के निर्माण के विषय में कहा है कि महादेव द्वारा जब सती के सती हो जाने के पश्चात् प्रजापती के यज्ञ को ध्वंस किया गया व उस क्रोध व क्षोभ का अन्त करने के उद्देश्य से नारद, नन्दि, स्वाति मुनि तथा तम्बुरू मुनि द्वारा वाद्यों का निर्माण तथा प्रयोग की विधि को वर्णित किया गया।

श्लोक –19–23 पं० शारंगदेव जी द्वारा वाद्यों किस प्रकार किस अवसर पर भी प्रयोग किया जाता है, उसके प्रयोग के अवसर का व्यक्त करते हुए कहा है कि वाद्यों को प्रत्येक उत्साह के स्थान पर अवश्य प्रयोग किया जाता है, जैसे राजाओं का जब अभिषेक किया जा रहा हो, किसी प्रकार की यात्रा या जलूस आदि हो ऐसे उत्सवों के साथ–साथ सभी प्रकार के मंगल कार्यों जैसे विवाह, उपनयन इत्यादि सभी अवसरों पर युद्ध में वीरों का उत्साहवर्धन करने हेतु, नाटकों में रौद्र रस के प्रसंगों में समस्त वाद्यों का वादन किया जाता है। इसके अतिरिक्त नाट्य प्रसंगों में भावों को प्रकट करते हुए व गायन तथा नृत्य के मध्य होने वाले विश्रान्ति काल में समस्त वाद्यों का वादन किया जाता है।

इस प्रकार वाद्यों को हृदय में स्फूर्ति का सृजन करने वाला तथा समस्त दुःखों का नाश करने वाला माना गया है और नाट्य प्रयोजन के अर्न्तगत गायन व नृत्य की कमियों को संतुलित करने हेतु भी प्रयोग में लाया जाता है।

श्लोक–23–27 संगीत रत्नाकर के वाद्याध्याय के विषय में वर्णन प्रस्तुत करते हुए कहा है कि प्रस्तुत अध्याय के अर्न्तगत वाद्य वर्गीकरण का आधार, प्रयोजन इत्यादि को वर्णित किया है। उसके पश्चात् तत् वाद्यों का बतलाया है, जिसके अर्न्तगत समस्त वीणाओं के आकार–प्रकार लक्षणों को वर्णित किया गया है। इसी प्रकार सुषिर वाद्य, अवनद्ध वाद्य तथा घन वाद्य को वाद्य तथा वादकों के गुण–दोष सहित वर्णित किया गया है।

श्लोक–28 पं० शारंगदेव जी द्वारा संगीत रत्नाकर के अर्न्तगत वाद्यों के भाण्ड अर्थात् शरीर की माप का आधार अंगुल व बालिश्त के आधार पर कही है।

4.3.2 तन्त्री वाद्य

इसके पश्चात् तन्त्री वाद्यों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है, जिसमें एकतन्त्री से आरम्भ होते हुए समस्त दस वीणाओं का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत अध्याय के श्लोक 29 से श्लोक 423 तक के मध्य तन्त्री वाद्यों का सम्पूर्ण विवरण लक्षणों, आकार–प्रकार, वाद्य धारण की विधि, वाद्य वादन की विधि तथा वादकों के गुण–दोषों को विस्तार से पं० शारंगदेव जी द्वारा कहा गया है। तन्त्री वाद्यों का यह विवरण इस शोध कार्य का केन्द्र है, जिस कारण प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के पांचवें अध्याय के अर्न्तगत तन्त्री वाद्यों का समस्त वर्णन प्रस्तुत किया गया है। जिसमें एकतन्त्री वीणा से लेकर निःशंक वीणा तक की सभी वीणाओं वर्णित किया है। साथ ही उनके वर्तमान स्वरूप को भी वर्णित करने का प्रयास किया गया है।

4.3.3 सुषिर वाद्य

पं० शारंगदेव जी द्वारा सुषिर वाद्यों का वर्णन तन्त्री वाद्यों के पश्चात् विस्तार से प्रस्तुत किया है। पं० शारंगदेव जी द्वारा दस सुषिर वाद्यों को कहा है। सुषिर वाद्यों के अर्न्तगत वाद्य, वाद्य लक्षण इत्यादि को भी वर्णित किया गया है। जिसमें सर्वप्रथम वंश के विषय में वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

4.3.3.1 वंश

श्लोक–424–439 वंश को बाँस, खैर की लकडी, हाँथी दाँत, चंदन, लाल चंदन, लोहे, कांसे, चाँदी तथा सोने आदि से बनाया जाता है। यह गोल चिकनी तथा दोष मुक्त लकडी या धातु द्वारा बनायी जाती है जो अन्दर से पूरी एक समान खोखली होती है तथा स्वर उत्पत्ति हेतु छिद्रों का निर्माण किया जाता है, वंश निर्माण को वर्णित किया है। वंश द्वारा स्वर की उत्पत्ति हेतु वंश में ऊपर की ओर फुत्कार छिद्र को बनाया जाता है, जिससे होकर स्वर छिद्रों के माध्यम से रंजित करने वाली ध्वनि का सृजन होता है। वंश के भाण्ड अर्थात् शरीर पर एक–एक पोर की दूरी पर स्वर छिद्रों को किया जाता है जिनका आकार बेर के बीज के समान होता है तथा वंश के भाण्ड का छिद्रों से लगभग दो अंगुल बाद तक खाली अर्थात् बिना छिद्र का होता है। इनकी संख्या लगभग आठ होती है। जिसमें से सात छिद्रों स्वर व एक छिद्र से नाद की उत्पत्ति मानी गयी है।

इसी प्रकार वंश की लम्बाई को एक–एक अंगुल बढाने पर वंश के ही विभिन्न स्वरूपों की प्राप्ती होती है। जिसमें एक अंगुल वाले को एकवीर, दो अंगुल वाले को उमापति, त्रिपुरूष के लिए तीन अंगुल, चार अंगुल से चतुर्मुख, पाँच अंगुल वाला पंचवक्त्र, इसी क्रम में षणमुख, मुनि, वसु, नागेन्द्र, महानन्द, रूद्र, आदित्य को बारह व मनु के चौदाह अंगुल कहे है। इसमें तेरह को इष्ट नहीं माना गया है। इसी प्रकार पन्द्रह तथा सत्रह को भी इष्ट नहीं माना गया है तथा सोलह अंगुल का कलानिधि कहा है। अन्त में अट्ठारह अंगुल का अष्टादशाड्.गुल को वर्णित किया है। इस प्रकार वंश के विभिन्न प्रकार लम्बाई के आधार पर पं० शारंगदेव जी द्वारा संगीत रत्नाकर के अर्न्तगत कहे है। प्रस्तुत श्लोकों में वर्णित है कि तेरह, पन्द्रह तथा सत्रह अंगुल से युक्त वंश को इष्ट नहीं स्वीकारा गया है और वंश का मुरली रूप बीस अन्तर का कहा है तथा बाईस अंगुल वाला श्रुतिनिधि वंश ही प्राप्त होता है, परन्तु अतिमन्द्र होने के कारण इष्ट नहीं स्वीकारा गया है।

श्लोक–440–454 इसके पश्चात् वंश में स्वर उत्पत्ति की विधि को पं० शारंगदेव जी द्वारा कहा गया तथा वर्णित किया है कि अष्टादशाड़्गुल के अर्न्तगत समस्त सात छिद्रों को बन्द करने पर मन्द्र सप्तक के षडज स्वर की प्राप्त होती है। इस प्रकार किस वंश से कौन सा स्वर उत्पन्न होगा, उसका सम्पूर्ण विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार एकवीर से

अष्टदशाड़्.गुल के मध्य तार षड़ज से होते हुए मध्य सप्तक के निषाद, धैवत, पंचम, मध्यम, गंधार, ऋषभ, षड़ज। मन्द्र निषाद, धैवत, पंचम, मध्यम, गन्धार ऋषभ तथा षड़ज स्वर की प्राप्ती होती है, जो प्रत्येक वंश के आधार स्वर के रूप में जाने जाते है। स्वर–उत्पत्ति हेतु विद्वानों द्वारा दोनों हाथों के व्यापार व संचालन को भी विस्तार से कहा है, जिसमें बांए हाथ के संचालन द्वारा तीन स्वर तथा दांए हाथ के संचालन द्वारा चार स्वरों की प्राप्ती होती है। विद्वानों के उच्च शिक्षण द्वारा वादक व्यवस्थित ढ़ंग से फूक को प्रस्तुत करने के योग्य बनता है, जो वीणा तथा कंठ जैसे स्वरों की उत्पत्ति में सहायक होता है, जब फूक द्वारा स्वर उत्पन्न किया जाता है व दूरी होने से मन्द्र सप्तक के स्वरों की प्राप्ती होती है। फूक द्वारा स्वरों की व्यवस्था को नियंत्रित किया जाता है।

श्लोक–455–459 पं० शारंगदेव जी द्वारा वंश की पाँच प्रकार की गतियों का उल्लेख किया गया है, जिसमें कंपित, वलित, मुक्ता, अर्धमुक्ता तथा निपीडिता सम्मिलित है। ओठ पर वंश को रखने पर कंपन उत्पन्न होता है, जिसे कंपिता गति कहा गया है। जिसका उपयोग वर्ण तथा अलंकारों के प्रयोजन से किया जाता है। अंगुलियों के हिलाने की क्रिया वलिता कही जाती है, संचारी वर्ण में वलिता की उत्पत्ति की जाती है। जब सभी छिद्र को अंगुलियों को मुक्त कर ध्वनि की उत्पत्ति की जाती है। वह मुक्ता गति कही जाती है, आधे छिद्रों खुला रखकर वादन करने की क्रिया अर्धमुक्ता कही जाती है। अर्धमुक्ता के माध्यम से नाद को धारण किया गया है तथा अन्त में निपीडिता को वर्णित किया है, जिसमें वर्णित किया है, कि जब सभी छिद्रों को पूर्ण रूप से बंदकर फूक से वंश को भरते है, उसे क्रिया को निपीड़िता कहा गया है।

श्लोक 460–501 पं० शारंगदेव जी द्वारा विभिन्न मतों आदि को वर्णित किया गया है, जिसमें स्वर निकासी की व्यवस्ता, तार, मध्य तथा मंद्र के संदर्भ में वर्णित किया है, इसके पश्चात् मतों के अनुसार ही वंश की नाप का वर्णन प्रस्तुत किया है। जिसमें वंश के सभी पन्द्रह प्रकारों का लम्बाई के आधार पर वर्णन किया है।

श्लोक–502–523 लम्बाई आधारित वंश के विषय में वर्णन प्रस्तुत करने के पश्चात् वंश के विषय में जो तथ्य शास्त्रों में प्रस्तुत किए गए है। उन पर पं० शारंगदेव जी द्वारा आपत्तियों को भी प्रस्तुत किया गया है, जिसमें वंश की रंजकता को उसकी लंबाई आदि के आधार पर

कहा गया है और साथ ही कहा गया है, कि जो वंश की लंबाई इतनी अधिक शास्त्रों में वर्णित की गई है, वह किस प्रकार वादित होनी है, क्योंकि इतनी विशाल फूंक कैसे संतुलित की जानी और कैसे रन्द्रों तक वादन के लिए हाथों का प्रयोग किया जाएगा।

श्लोक–524–561 इसके पश्चात् ग्रंथकार पं० शारंगदेव जी द्वारा वंश की लंबाई, अंदर के खोखले घेरे की नाप आदि को वर्णित किया है, जिसमें यह भी कहा गया है, कि एकवीर, उमापति तथा त्रिपुरुष में रंजकता तथा मधुरता की कमी होती है, इसके अतिरिक्त अन्य में रंजिता पाई जाती है।

श्लोक–562–651 पं० शारंगदेव जी द्वारा अलग–अलग नाप की पन्द्रह वशों को वर्णित किया है। एकवीर से अष्टादशगुड़्.ल तक सभी वंश के प्रकारों को दंड के आधार पर कहा है। वीणा, मानव कंठ तथा वंश तीनों ही स्वर को उत्पन्न करने के कारण है, जिसमें रंजकता पूर्ण मधुर ध्वनि हेतु वंश को सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

श्लोक–552–653 वंश को विनियोग के विषय में ग्रन्थकार द्वारा भावों, अभिव्यक्तियों तथा रसों के आधार पर वंश के प्रयोग का वर्णन किया गया है, जिसमें शोक, करूणा तथा श्रृंगार के वंश वादन को अधिक उचित कहा गया है। साथ ही मंद्र, मध्य तथा तार स्वरों की लय आधारित वर्णन भी किया गया है कि द्रुत लय में श्रृंगार भाव के अन्तर्गत वादन होता है, क्रोधपूर्ण कम्पन व स्पूर्ति हेतु भी द्रुत लय को कहा गया है। यह सम्पूर्ण वर्णन संगीत रत्नाकर में पं० शारंगदेव जी द्वारा मतंग मुनि के प्रयोगों को कहा गया है।

श्लोक–654–656 विनियोग के पश्चात् फूत्कार के गुणों को वर्णित किया गया है। जिन्हें इस प्रकार कहा है, स्निग्धता अर्थात स्नेह, घनता अर्थात अन्तः सारता, रक्त अर्थात रंजकता, व्यक्ति अर्थात प्रकटता, प्रचुरता अर्थात बाहुल्य, लालित्य अर्थात सुन्दर स्त्रियों का लावण्य, प्रसिद्ध चातुर्य कोमलत्वं अर्थात सुकुमारता, अनुरणन अर्थात प्रतिशब्द, त्रिस्थानत्व अर्थात तीनों स्थानों की व्याप्ति, श्रावकत्व अर्थात् श्रोतोओं के चित्त को सुख प्रदान करने वाला, मधुर्य अर्थात मधुर ध्वनि, सावधानत्व अर्थात एकाग्रता। इस प्रकार फूत्कार के गुणों को कहा गया है, इस प्रकार बारह गुणों को वर्णित किया गया है।

श्लोक–424 फत्कार के गुणों के पश्चात् दोषों को व्यक्त किया गया है, जिसमें यमल, स्तोक, कृश तथा स्खलित को कहा है। वंश में बार–बार फूक अर्थात फूत्कार करना यमल कहा है, इसी प्रकार स्थूल ध्वनि जो स्थान की प्राप्ति ना करें वह स्तोक है। बारीक ध्वनि का अभाव कृत होना तथा रुक–रुक कर या टूट–टूट कर उत्पन्न होने वाली ध्वनि स्खलित कहा है। इसके अतिरिक्त हिलती हुयी, ध्वनि जो स्वर को प्राप्त करने में समर्थ ना हो, उस कम्पन युक्त ध्वनि को दोष कहा गया है। इसके पश्चात् तुम्बे जैसी ध्वनि तुम्बकी दोष काक अर्थात कौवें जैसी ध्वनि उत्पन्न करना ककी दोष कही है, दान्तों को घिसने जैसी ध्वनि को संदष्ट कहा है तथा अन्त में सप्तकों की सटीक उच्चारण न होने या अव्यवस्थित होना भी दोष कहा गया है। इसके अतिरिक्त कंठ गुण–दोष ही वादक के गुण दोष कहे गए है।

श्लोक–663–667 फूत्कार दोषों के अतिरिक्त वंशी वादक के गुण तथा दोषों की चर्चा की गई है। जिसमें हास्त संचालन अर्थात अंगुलियों द्वारा किस प्रकार स्वरों को प्रस्तुत करना है, यह वंश वादक का सबसे बड़ा गुण माना जाता है। इसके पश्चात रंजकता, आरोह–अवरोह का वादन, मधुरता व कौशलता पूर्वक ढंग से रागों की अभिव्यक्ति करना, गीतों का वर्णन करने में निपूर्ण, गायकी तानों का कुशल वंश पर प्रस्तुत करना, तीनों सप्तकों का स्पष्ट रुप से प्रदर्शित करना, वादन के समय हुई भूलों को छुपा लेना, रागों का ज्ञान इत्यादि गुणों को व्यक्त किया गया है। इन सभी गुणों के विपरीत दोषों को व्यक्त किया गया है। इन्हीं गुण तथा दोषों को ध्यान में रखते हुए, वादन को कुशलता पूर्ण ढ़ंग से प्रस्तुत करना चाहिए।

श्लोक–668–782 इसके पश्चात् वंश के द्वारा होने वाले वृंद वादन का वर्णन किया गया है तथा वंश पर प्रस्तुत होने वाले देसी रागों का वर्णन कहा गया है। वाद्यों का वर्णन करते हुए, रागांग, भाषांग, उपांग, क्रियांग तथा दो भाषाओं को वर्णित किया है। जिसमें रागांग के अर्न्तगत ग्यारह, भाषांग के अर्न्तगत छः, उपांग के अर्न्तगत नौ, क्रियांग के अर्न्तगत तीन तथा दो भाषाओं में कौशिक तथा ललित भाषा को वर्णित किया गया है। इस प्रकार वंश को लक्षण इत्यादि को पं० शारंगदेव जी द्वारा वर्णित किया गया है।

इस प्रकार वंश को पूर्ण रूप से पं० शारंगदेव जी द्वारा विस्तार से कहा है, जिसमें वंश सम्बन्धित सभी पक्षों कहा गया है। वंश के पश्चात अन्य सुषिर वाद्यों का वर्णन प्रस्तुत किया

गया है, जिनकी संख्या लगभग नौ है। वंश तथा अन्य सुषिर वाद्यों के अर्न्तगत पं० शारंगदेव जी द्वारा कहे गए है वाद्य इस प्रकार है।

4.3.3.2 पाव

श्लोक–783 वंश के पश्चात् पाव नामक सुषिर वाद्य का वर्णन इस प्रकार है। बाँस द्वारा निर्मित नौ अंगुल वाले नागेंद्र नामक वंश के समान होता है। जिसे बाँस की पत्तियों द्वारा लपेटकर निर्मित किया जाता है। इस वाद्य को लोकवाद्य के रूप में बजाया जाता है।

4.3.3.3 पाविका

श्लोक–784–786 सुषिर वाद्य में तीसरे वाद्य के रूप में पाविका का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। वंश तथा पाव के समान पाविका का निर्माण भी बाँस द्वारा होता है तथा यह बारह अंगुल लम्बी होती है, व मोटाई अंगूठे के बराबर होती है तथा भीतरी भाग कनिष्ठा के आगे के भाग के बराबर होता है। यह वाद्य फूत्कार द्वारा वादित होता है तथा दंड पर पांच छिद्र किए जाते है। पाविका का प्रयोग से नाग या यक्ष आवेश में आते है, निश्चित समय के अंतर्गत पाविका का वादन किया जाता है।

4.3.3.4 मुरली

श्लोक–787 मुरली का वर्णन करते हुए, मुरली की लंबाई लगभग दो हाथ कही है, जो चार स्वरों के छिद्रों से युक्त होती है। इसे मुरली कहा जाता है, जो अद्भुत नाद का सृजन करती है।

4.3.3.5 मधुकरी

श्लोक– 788–794 मधुकरी का वर्णन करते हुए कहा है, कि मधुकरी का कालहा के आकार की होती है, परन्तु कहला का वर्णन पं० शारंगदेव जी द्वारा मधुकरी के पश्चात् किया है। मधुकरी की लंबाई अठ्ठाईस अंगुल होती है तथा यह सीप सा लकड़ी द्वारा बनाई जाती है। मधुकरी का एक मुख्य छिद्र तुअर दाल अर्थात अरहर की दाल के समान होता है। वंश के समान मुखरंद्र के बाद चार अंगुल का स्थान छोड़कर सात स्वर छिद्र किए जाते है तथा ध्वनि हेतु यव के समान मोटाई की तांबे की चार अंगुल चौड़ी नली का प्रयोग किया जाता

है, जिस पर हाथी दांत या सीप की बनी चक्रिका को लगाया जाता है, व छेद पर कास नामक घास या देवनल से निर्मित मालती नामक फूल की खुली हुई, कली के समान व दूध में पकाकर सीपी लगाई जाती है। वादन विधि वंश के समान ही होती है। इस प्रकार मधुकरी का वर्णन पं० शारंगदेव जी द्वारा किया गया है। वर्तमान में प्रयोग की जा रही शहनाई का स्वरूप मधुकरी के समान ही माना जाता है।

4.3.3.6 काहला

श्लोक– 785–796 धातु निर्मित जैसे तांबा, सोना, चांदी जैसी धातुओं द्वारा बनायी जाती है, जिसका बीच का भाग खोखला और जो धतूरे के पुष्प जैसे मुंह वाली हो तथा तीन हाथ लंबी हो उसे काहला नाम से जाना जाता है। इस कहला की ध्वनि वीरों की स्तुति के समान होती है।

4.3.3.7 तुण्डकिनी

श्लोक–797 पं० शारंगदेव जी द्वारा तुण्डकिनी के विषय में कहा है, कि तुण्डकिनी दो हाथ लंबी व कहला के समान आकार की होती है, लोकवाद्य में रूप में तित्तिरी तथा तुरतुरी को तुण्डकिनी का प्रकार कहा गया है।

4.3.3.8 चुक्का

श्लोक–798 चुक्का का वर्णन करते हुए कहा गया है, कि चुक्का चार हाथ लम्बी काहला तुण्डकिनी के लक्षणों से युक्त एक सुषिरवाद्य है।

4.3.3.9 श्रृंग

श्लोक–799–801 श्रृंग का आकार हाथी की सूंड के समान होता है, यह पूर्ण रूप से दोषों से रहित चमकीली, चिकनी भैंसे की सींग से मूल भाग का निर्माण होता है तथा आकार धतूरे के पुष्प के समान तथा आठ अंगुल का होता है, जो नाद का सृजन करता है। ऊपरी सिरे से दो या तीन अंगुल के भाग को छोड़कर फुत्कार का स्थान बनाया जाता है, जिससे थू, थू, कार के बोलों से युक्त ध्वनि उत्पन्न होती है। यह वाद्य ग्वालों द्वारा खेल में बजाया जाता है, जो एक गंभीर ध्वनि को उत्पन्न करता है।

4.3.3.10 शंख

श्लोक– 802–805 धातु या मोम के द्वारा ग्याराह अंगुल सभी प्रकार के दोषों से मुक्त तथा जिसकी नाभि अंदर से खोखली हो तथा मूल से सिर तक आकृति सकरी होती जाए, वह शिखर के मधु के छेद आधा अंगुल का और मध्य भाग का पेट बड़ा हो, उसे शंख के रूप में वर्णित किया जाता है। वादन हेतु वादक द्वारा अपने स्वांस पर नियंत्रण रखते हुए धू, थो दिति जैसे वर्णों को फुत्कार द्वारा बजाया जाता है।

इस प्रकार सुषिर वाद्यों के लक्षणों व प्रकारों को पं० शारंगदेव जी द्वारा वर्णित किया गया है। सुषिर वाद्यों में वंश को मुख्य वाद्य के रूप में स्वीकारा गया है। वंश का मूल रूप में अर्थ बांस होता है, व वंश के निर्माण हेतु बांस निर्मित नली का प्रयोग किया जाता है, जो खैर, लाल चंदन या किसी धातु द्वारा बनाया जाता है। जिसे मुखरन्द्रों से फुत्कार दण्ड़ के अन्य छिद्रों द्वारा होती हुयी ध्वनि की उत्पत्ति करती है।

इस प्रकार वंश के 15 प्रकारों को वर्णित किया गया है। इस प्रकार साथ ही वादन विधि, अंगुलियों के संचालन आदि को भी पं० शारंगदेव जी द्वारा निर्मित किया गया है। इस प्रकार 426 से 782 के मध्य मात्र वंश को ही वर्णित किया गया है। इसके पश्चात् अन्य सभी सुषिर वाद्यों का वर्णन श्लोक 783 से श्लोक 805 के मध्य प्राप्त होता है। पं० शारंगदेव जी द्वारा स्वयं को कई बार लक्ष्य तथा लक्षणों के ज्ञाता के रूप में व्यक्त किया गया है। तंत्री वाद्यों के संदर्भ में निःशंक वीणा के निर्माणकर्ता व वंश के विभिन्न श्रेणियों की भी रचना प्रस्तुत की है। इन सभी तथ्यों के आधार पर यह प्रतीत होता है कि पं० शारंगदेव जी वंश वादन में भी निपूर्ण थे।

4.3.4 अवनद्ध वाद्य

पं० शारंगदेव जी द्वारा अवनद्ध वाद्यों का वर्णन प्रस्तुत विस्तृत ढंग से प्रस्तुत किया गया है। प्राचीन काल से ही अवनद्ध वाद्यों का महत्व सर्वाधिक रहा है व अवनद्ध वाद्यों का सर्वाधिक निर्माण भी किया गया है। नाट्यशास्त्र में भरत मुनि द्वारा सौ प्रकार के अवनद्ध वाद्यों को कहा गया है, जो वर्तमान में सौ से भी अधिक प्राप्त होते है। प्रस्तुत अध्याय के अर्न्तगत संगीत रत्नाकर वर्णित अवनद्ध वाद्यों का वर्णन इस प्रकार है।

4.3.4.1 पटह

शलोक– 806–1017 संगीत रत्नाकर में वाद्याध्याय के अंतर्गत अवनद्ध वाद्यों में पटह का वर्णन किया गया है। पटह दो प्रकार कहे गए है, मार्गी पटह तथा देसी पटह। मार्गी पटह का वर्णन इस प्रकार है–

4.3.4.1.1 मार्गी पटह

शलोक– 807–817 मार्गी पटह 2.5 हाथ लंबा अर्थात ढाई हाथ लंबा होता है तथा चार अंगुल का घेरा होता है। मध्य भाग मोटा होता है, पटह का दांया मुख साढ़े ग्यारह अंगुल तथा बांया मुख्य साढ़े दस अंगुल का होता है। पटह के दाएं मुख पर लोहे द्वारा निर्मित वलय तथा बाएं मुख पर लता निर्मित वलय को स्थापित किया जाता है। पटह के मुख को महा पूर्व मरे बछड़े की खाल द्वारा बनाया जाता है। वलय पर सात छेद कर उन छिद्रों को महीन डोरी डालकर उस पर सोने या अन्य धातु के कलश लगाया जाता है, यह कलश चार अंगुल लंबा होता है। बांए मुख से चार अंगुल छोड़कर तीन अंगुल की चौड़यी वाली लोहे की पट्टी को लगा पटह के चारों ओर बांधा जाता है तथा पशु के चमड़े से पटह के दोनों मुखों को मढ़ा जाता है।

दाएं ओर के मुख के चारों ओर छिद्र किए जाते है, इन छिद्रों में डोरी को दूसरे मुंह की डोरी के वलय से मजबूत करने हेतु बांधा जाता है, व बाएं मुख के सात छेदों में कलश को लपेटकर लाहे के वलयों के अंदर बांधा जाता है। पं० शारंगदेव जी द्वारा स्कन्द देवता के मार्ग पटह को वर्णित करते हुए कहा गया है कि बाएं वालय में जो कलश होता है, उसे लपेटने हेतु कच्छा अथार्त् चपटी पट्टी बांधी जाती है।

4.3.4.1.2 देशी पटह

श्लोक–818–821 पटह के मार्गी रूप के पश्चात् देशी पटह का स्वरूप इस प्रकार कहा है कि देशी पटह डेढ़ हाथ लंबा होता है, जिसका दांया मुख में सात अंगुल तथा बांया मुख साढ़े छः अंगुल का होता है। पशु के पेट के अंदर के चमड़े का प्रयोग किया जाता है, जिससे बांए मुख को बांधा जाता है। मार्गी तथा देशी दोनों पटह का निर्माण खैर की लकड़ी द्वारा

किया जाता है तथा मार्गी तथा देशी के तीन प्रकार माने गए है, उत्तम, मध्य तथा अधम। इस प्रकार पटह के प्रकारों को वर्णन को संगीत रत्नाकर में प्राप्त होता है।

श्लोक–822–1017 पटह प्रकारों के पश्चात् पटह के वर्णों को वर्णित किया गया है। सोलह कहे गए है– क, ख, ग, घ ,ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न र तथा ह। यह सभी सोलह वर्ण देशी तथा मार्गी दोनों से उत्पन्न किए जाते है। लोगों द्वारा देशी पटह को अड्डावज कहा जाता है। इसकी लम्बाई अट्ठारह अंगुल की होती है, इसका मध्य भाग मोटा होता है व मोम तथा कपड़े से लपेटा जाता है। पटह के वादन लक्षण को वर्णित करते हुए कहा है कि मार्गी पटह को गोद में रखकर वादन किया जाता है तथा नाट्य आदि में ऊर्ध्व मुख में पटह को रखकर वादन हाथ या कोण द्वारा किया जाता है। पटह के वादन की विधि, व हस्त संचालन का वर्णन प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि पटह के सभी पाटों अर्थात वर्णों का वादन होता है, इसे ही हस्त पाट कहा जाता है। इस प्रकार शिव मुख से उत्पन्न पांच हस्त पाटों के सात–सात भेद वर्णित करते हुए, पैन्तिस ताल पाट कहे है।

ताल पाट को हस्त पाट का पर्याय कहा गया है। नंदीकेश्वर के हस्त पाट आठ अपाट तथा शिव मुख से उत्पन्न पाटों के स्वरूपों को बताया है, जिसके अंतर्गत वामदेव के सात पाट, अघोर उत्पन्न सात पाट, तत्पुरूष द्वारा उत्पन्न सात पाट, ईशान द्वारा उत्पन्न सात पाट हस्त पाटों को वर्णित किया है। नंदीकेश्वर के चार पाट है, कोणहस्त, संभ्रांत, विषय तथा अर्धसम। इस प्रकार नाखूनों द्वारा आघात के विभिन्न प्रकारों के आधार पर इक्कीस हस्त पाट वर्णित किए है। आघात की इक्कीस हस्त पाटों के बाद सोलह हुडुक्का के हस्त पाट कहे है। आठ अपाट हस्त पाट कहे है व सभी को वर्णित किया है। पटह वाद्य में प्रयुक्त होने वाले सभी प्रकार के पाट के विभिन्न भेदों को वर्णित किया गया है। इस प्रकार दो अलग पाट, दो चित्र पाट, पाँच संच पाट आदि वाद्य, वाद्यों का उद्देश, वाद्यों के लक्षण, वाद्य प्रबंध तथा वाद्य प्रबंधों का निरूपण वर्णित किया गया है।

4.3.4.2 मर्दल

श्लोक–1020–1068 बीजपुर के पेड़ की लकड़ी द्वारा मर्दल के पात्र को बनाया जाता है। यह पात्र संपूर्ण रूप से दोष रहित लकड़ी द्वारा बनाया जाता है, इसकी मोटाई आधा अंगुल मानी गई है, यह पूरा पात्र इक्कीस अंगुल का होता है। बांया मुख चौदाह अंगुल तथा दांया

मुख तेरह अंगुल का होता है तथा मध्य भाग थोड़ा मोटा रखा जाता है। दोनों मुखों पर अर्थात दाएं मुख पर चौदाह अंगुल और बाएं मुख पर पन्द्रह अंगुल का गोल मोटा चमड़ा लगाया जाता है तथा दोनों ही मुख पर चालिस छेद एक–एक अंगुल के अंतर में किए जाते है। जिन पर चमड़े की बद्धियों को पिरोया जाता है, व इनकी पीठ तथा पेट दिखाई दे कुछ इस प्रकार इनको बांधा जाता है तथा मध्य में तीन बंधनों को मजबूती से लपेटा जाता है।

इन बद्धियों को गाय के मूत्र वाली आकृति में बांधना चाहिए, जिससे दोनों मुखों के चमड़ों को अच्छे से कसा जा सके। दोनों मुख में दोहरी करके पट्टियों को खींचकर बांधा जाता है। वादन हेतु कमर पर दो छोरों से युक्त रेशमी या अन्य किसी कपड़े आदि से बने हुए आठ अंगुल चौड़ाई की पट्टी को बांधा जाता है। इस प्रकार मर्दल, मृदंग तथा मुरज का वर्णन भरत मुनि द्वारा तथा मतंग मुनि द्वारा पुष्करत्रय के रूप में वर्णित किया है, परंतु प्रचार में अधिक ना होने के कारण पं० शारंगदेव जी द्वारा विस्तार के साथ वर्णन नहीं किया गया है। मर्दल के बाएं मुख पर पके चावल के साथ राख को मिश्रित कर उसे पूरी के आकार का बनाकर लगाया जाता है तथा दाएं मुख पर हल्का लेप लगाया जाता है। जिससे बादल के समान गंभीर व बुलंद ध्वनि की उत्पत्ति होती है।

इस प्रकार पं० शारंगदेव जी द्वारा नंदीकेश्वर के मर्दल को वर्णित किया गया है। कुछ विद्वान तथा आचार्य द्वारा मर्दल के निर्माण हेतु लाल चंदन तथा खैर की लकड़ी को उपयुक्त कहा जाता है व लंबाई तीस अंगुल कही है, तथा मोटाई एक अंगुल मानी है, तथा बांए मुख को बारह तथा दांए मुख को साढ़े ग्यारह अंगुल का माना जाता है। दाएं मुख के सात पाट कहे है। बाएं मुख पर च,त,र तथा द,ध,ल पाट वर्णित किए है। पटह के सामान अन्य सोलह वर्ण कहे है। अवनद्ध वाद्य के वर्णों के तीन लक्षण कहे है, शुद्ध कूट तथा खंड। जिसमें सात शुद्ध वर्ण कहे गए है। कूट वर्ण, शुद्ध वर्ण के मिश्रण से निर्मित होते है तथा खंड का निर्माण कूट तथा शुद्ध का मिश्रण करके निर्मित करते है। इस प्रकार मर्दल के लक्षणों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। मर्दल वादक के चार प्रकार माने गए है, वादक, मुखारी, प्रतिमुखारी तथा गीतानुग। मर्दल वादक के चार प्रकारों का वर्णन विस्तार से किया है। मर्दल के गुण तथा दोष के साथ–साथ मर्दल के वृंद प्रयोगों का भी वर्णन किया गया है। इस प्रकार मर्दल का संपूर्ण वर्णन पं० शारंगदेव जी द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

4.3.4.3 हुडुक्का

श्लोक–1069–1079 हुडुक्का की लंबाई एक हाथ तथा कुल घेरा अट्ठाइस अगुल का होता है। हुडुक्का की मोटाई एक अंगुल कही गयी है। दोनों मुख सात–सात अंगुल के होते है तथा दोनों ही मुखों पर कड़े अर्थात् लता के मध्य भाग की बनी इक्कीस अंगुल लम्बी तथा सवा अंगुल मोटी उद्दली को बांधा जाता है, जो मुखों के साथ ही स्थापित होती है। हुडुक्का के दोनों मुखों पर छः–छः छेद किए जाते है। इस प्रकार पटह के समान हुडुक्का के दोनों मुखों को झिल्ली डोरी से कसा जाता है और दोनों मुखों पर कलश लगाया जाता है, जिसके सामने के भाग को तीन अर्गला तथा पीछे के भाग को अर्गला कहा जाता है। मध्य भाग को बांधने हेतु उदर में पट्टी बांधी जाती है। स्कन्द पट्टी का वर्णन करते हुए कहा है कि यह चौडाई में तीन अंगुल की सुन्दर, मनोहर, सभी दोषों से रहित बत्तिस धागों को बटकर बनायी हुयी मजबूत डोरी को दोनों कंधों तथा गर्दन में धारण कर व इसके चौड़े हिस्से पर आधी अंगुल पर नाद को उत्पन्न करने वाला छेद होता है। इसे ही विद्वानों द्वारा हुडुक्का कहा गया है। स्कन्द पट्टी को कंधे पर धारणकर दांए हाथ की सहायता से वादन किया जाता है तथा हुडुक्का के मध्य भाग को पट्टी कहा गया है, जिस पर बांए हाथ को रखा जाता है। पं० शारंगदेव जी द्वारा सात माताएं अर्थात् स्वरों को सात देवी कहा है। पटह के वर्णों का वादन किया गया है जिसमें देंकार के अतिरिक्त अन्य सभी प्रयोग किए जाते है। इस प्रकार हुडुक्का नामक वाद्य को संगीत रत्नाकर में पं० शारंगदेव जी द्वारा वर्णित किया गया है।

4.3.4.4 करटा

श्लोक–1079–1086 करटा को बीजसार की लकड़ी द्वारा बनाया जाता है, जो चौथाई अंगुली ही मोटी होती है। करटा एक हाथ लंबा होता है, जिसकी परिधि में चालिस अंगुल का कही है। कुछ विद्वानों द्वारा चौदह और बारह अंगुल के दोनों मुख कहे है। करटा के दोनों मुखों में अन्दर की ओर से वलय लगाकर तीन–तीन तार डाले जाते है, और उन पर चमड़े को मढ़ा जाता है। इसमें चौदीत्रह छेद होते है, एक–एक छिद्रों को छोडते हुए डोरी को नारियल के खप्पर में डालते हुए मछली के आकार में बुनते हुए ही बांधा जाता है। इसे ही पं० शारंगदेव जी द्वारा करटा कहा गया है। वादन हेतु दोनों छोरों पर बंधी पट्टी का प्रयोग कन्धों

या कमर पर धारण करने हेतु किया जाता है तथा दो कोणों की सहायता से वादन किया जाता है। जिससे मुख्य रूप से तिरिकि–तिरिकि वर्णों से युक्त दो पाटों का वादन होता है।

4.3.4.5 घट

श्लोक–1087 मिट्टी का ठोस, मजबूत घट, जो चिकना हो तथा कुशल प्रविधि द्वारा पकाया गया हो और छोटे मुख वाला हो व उदर आकार में बड़े होने की बात कही गयी है। घट के मुख को चमडे से मढा जाता है। वादकों द्वारा घट को दोनों हाथों की सहायता से बजाए जाने का वर्णन पं० शारंगदेव जी द्वारा किया गया है। मर्दल तथा घट वाद्य के पाट वर्ण आदि एक समान ही माने गए है।

4.3.4.6 घडस

श्लोक–1088–1111 घड़स को हुडुक्का का ही रूप कहा गया है, परन्तु अन्तर मात्र दांए मुख पर स्थित कडे का है, जो उद्दली से बंधा जाता है तथा बांए मुख का कडा डोरी के द्वारा नियंत्रित किया जाता है। घड़स का मध्य भाग अर्थात् उदर पट्टी पर हाथ नहीं रखा जाता है, व गोंकार की बहुलता वाले पाट का वादन किया जाता है। बांए हाथ की अंगुलियों से आघात करते हुए, अंगूठें से दबाया जाता है तथा दांए हाथ की ओर मोम के लेप वाले भाग पर घिसकर वादन प्रस्तुत किया जाता है।

4.3.4.7 ढ़वस

श्लोक–1112–1116 ढवस की लम्बाई एक हाथ बतायी गयी है तथा परिधि उन्तालिस अंगुल की कही है। लता निर्मित वलय को दोनों मुखों पर लगाया जाता है। यह बारह अंगुल का होता है तथा सात–सात छेद किए जाते है। दोनों मुखों को कंबलों से ढककर डोरियों को छेद में डालकर मजबूती के साथ पिरेया जाता है। इस प्रकार पं० शारंगदेव जी द्वारा ढवस को वर्णित किया गया है। वादन हेतु स्कन्द को कन्धें पर रखकर बाएं मुख को हाथ द्वारा तथा दांए मुख कों कोण द्वारा बजाया जाता है तथा दंकार के पाटों को वादन में प्रयोग किया जाता है।

4.3.4.8 ढ़क्का–श्लोक–1116–1117 ढक्का ढवस का ही रूप है। दोनों मुख तेरह अंगुल के होते है। इसे बांए हाथ में पकड़कर दांए हाथ से कोण से प्रहार करते हुए, वादन किया जाता

है। देंकार पाठ वर्णों का वादन अधिक किया जाता है। इस प्रकार ढक्का का वर्णन पं० शारंगदेव जी द्वारा किया गया है।

4.3.4.9 कुडुक्का

श्लोक–1018–1099– कुडुक्का तथा हुडुक्का में मात्र अर्गला का ही अन्तर प्राप्त होता है। कुडुक्का में अर्गलों का प्रयोग नहीं किया जाता है तथा वादन कोण व हाथ दोनों की सहायता से किया जाता है। कुडुक्का देवता क्षेत्रपाल को माना जाता है।

4.3.4.10 कुडुवा

श्लोक–1099–1103 बीज की लकडी द्वारा कुडुवा के पात्र को निर्माण किया जाता है। इक्कीस अंगुल लम्बी तथा सात–सात अंगुल के व्यास के दोनों मुख होते है तथा आकृति में एक समान होता है तथा तिकोनी तीन अंगुल मोटा होता है। दोनों मुख गोल व मध्य भाग से नौ अंगुल का होता है। लता द्वारा निर्मित वलयों युक्त सात–सात छेदों का होता है। कुडुवा के दोनों मुखों को कंबलों द्वारा मढा जाता है तथा छेदों में तन्त्री को डालकर मजबूती से बांधा जाता है। इसके अतिरिक्त कुडुवा के वर्ण अर्थात् पाट हुडुक्का के समान ही कहे गए है।

4.3.4.11 रूंजा

श्लोक–1104–1109 पं० शारंगदेव जी द्वारा रूंजा को वर्णन करते हुए कहा है, कि रूंजा अट्ठारह अंगुल का दृढ तथा समान आकृति का वाद्य होता है, जिसमें ग्यारह अंगुल की नाप के वलयों का प्रयोग होता है। जिनका मुख चमडे से बांधा जाता है। बांए मुख पर दो कडी होती है, जिसकी एक कडी मुख के बराबर तथा दूसरी चार अंगुल की होती है। इन दोनों के मध्य स्नायु निर्मित नली होती है। बांए मुख के एक छेद पर सूत की बनी डोरी होती है तथा दोनों ही मुख सात–सात कर्परा पूर्व की भांति स्थापित किए जाते है तथा चौडायी पौन हाथ लम्बी नागपाश के समान मजबूत होती है तथा वादन हेतु कन्धें पर धारण कर वादन किया जाता है। रूंकार की उत्पत्ति के कारण ही यह रूंजा कहा जाता है। रूंजा के देवता भृंगी का कहा गया है, जो महादेव शिव के ही एक गण है तथा इसके अतिरिक्त रूंजा के वर्ण का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

4.3.4.12 डमरूक

श्लोक–1110–1113 डमरूक एक बालिश्त लम्बा वाद्य है, तथा मुख आठ अंगुल का होता है तथा दोनों मुख कडों से युक्त तथा चमडे द्वारा मढे जाते है। डमरूक का मध्य भाग त्रिवली के समान सकरा होता है तथा सूत की डोरी से बांधा जाता है। डमरू के सिरों पर मिट्टी के साथ मोम को दृढता से लगाया जाता है और डोरियों को बांधा जाता है। डमरूक को मध्य भाग से पकडका बजाया जाता है जिससे डग वर्ण की ध्वनि उत्पन्न होती है। इस प्रकार पं० शारंगदेव जी द्वारा डमरू को कहा है।

4.3.4.13 डक्का

श्लोक–1114–1120 डक्का एक वितास्ति का ही होती है तथा इसका मध्य भाग पातला होता है। डक्का का मुख आठ अंगुल का होता है तथा संपूर्ण पात्र की कुल मोटाई आधा अंगुल होती है। दोंनों मुखों पर तांबे के चार शंकु लगाये जाते है, जिससे तंत्रियों को बंधन जाता है। इन्हीं शंकुओं से दो तारों को नीचे की ओर व दो तारों को ऊपर की ओर नाद की उत्पत्ति करने हेतु लगाया जाता है, व सरकंडे की सिक में डाला जाता है। डक्का के पटाक्षर हुडुक्का के समान ही होते है। वादन हेतु दस अंगुल के कुडुप का प्रयोग होता है अन्य आचार्यों व विद्वानों द्वारा हाथ तथा कुडुप दोनों से माना गया है। डक्का पर हाथ से आघात करने से डंकार की ध्वनि प्राप्त होती है। इसप्रकार वादन तथा वर्णों को वर्णित कियागया है।

4.3.4.14 मणिडडक्का

श्लोक–1121–1126 मणिडडक्का कुछ परिवर्तनों के साथ डक्का वाद्य ही है। मणिडडक्का की लम्बाई सोलह अंगुल कही गयी है तथा दोनों मुखों का भीतरी भाग आठ अंगुल का कहा है। मणिडडक्का का मध्य भाग परिधी में सोलह अंगुल का ही होता है तथा इसमें अर्गला तथा पट्टी नहीं होती है परन्तु ऊपरी हिस्से के मध्य में दो डोरियाँ होती है। ऊपर का भाग तथा डोरी के एक जोड़ को बांए हाथ के अंगूठे तथा तीनों अंगुलियों द्वारा पकड़कर कुण्डली के सिरे को तर्जनी द्वारा दबातें है और दांए घुटने पर टिकाकर मुख को दांए हाथ द्वारा आघात किया जाता है। उत्कक्ष को हाथ की कलाई के ऊपर रखकर दोनों डोरियों को अंगूठे, अनामिका व कनिष्ठा से पकड़कर दूसरे हाथ की तर्जनी तथा मध्यमा से बजाया जाता है।

4.3.4.15 ड़क्कुली

श्लोक–1127–1132 डक्कुली बैल की सीगों, कांसे या हाथी दाँत के द्वारा बनाया जाता है। इसकी लम्बाई पांच अंगुल होती है, तथा दोनों मुख चार अंगुल के होते है। डक्कुली के निर्माण में भेंड़ या बकरे की खाल का प्रयोग किया जाता है। निर्माण हेतु कांसे से दो चक्रों का प्रयोग किया जाता है। तांबे या लोहे के पांच–पांच छेदों के उद्दली प्रयोग की जाती है। इन छेदों में सूत की डोरी बांधी जाती है। इन डोरियों को न अधिक ढीला रखा जाता है और न ही अधिक कसा जाता है। इस प्रकार डक्कुली का वर्णन संगीत रत्नाकर में प्राप्त होता है।

4.3.4.16 सेल्लुका

शलोक–1133–1137 सेल्लुका की लम्बाई छब्बिस अंगुल का होता है तथा परिधी तीस अंगुल की कही है। सम्पूर्ण पात्र एक समान होता है। सेल्लुका बीज की दोष रहित तथा पूर्ण स्वच्छ लकडी द्वारा निर्मित होता है व दोनों मुख दस–दस अंगुल के होते है। कुछ आर्चाय मुखों को ग्यारह अंगुल का कहते है। दोनों मुखों को आपस में जोडने हेतु एक–एक अंगुल अधिक के वलयों को बांधा जाता है तथा छः छेदों को तर्जनी की मोटाई वाले वलय बांधकर उसमें डोरियों को बांधा जाता है। इसके भीतरी भाग में तारों को लगाया जाता है, जो बांयी ओर होता है तथा दांए हाथ में कोण को धारण करके दांए मुख का वादन किया जाता है। इस प्रकार बांए मुख से झेंकार व दांए मुख से धिंकार नामक स्वरों की उत्पत्ति होती है।

4.3.4.17 झल्लरी

श्लोक– 1138–1140 झल्लरी वाद्य का वजन पच्चीस पलों को होता है तथा लम्बाई बारह अंगुल होती है। झल्लरी की परिधी अट्ठारह अंगुल कही है। सम आकार का वाद्य है, कडों के साथ डोरी होती है तथा गले के छेदों को जोडा जाता है। चमडे से इसे मढा जाता है। इस प्रकार झल्लरी कही गयी है। झल्लरी को बांए हाथ में धारण कर दांए हाथ से वादन किया जाता है।

4.3.4.18 भाण–लोक–1141 भाण वनज में झल्लरी का होता है व घेरा बारह अंगुल का होता है। अन्य सभी लक्षण पं० शारंगदेव जी द्वारा झल्लरी के समान ही व्यक्त किए है।

4.3.4.19 त्रिवली

श्लोक–1142–1146 त्रिवली के दोनों मुख सात–सात अंगुल के होते है तथा एक हाथ लम्बा होता है, मध्य भाग मुट्ठी में पकडा जा सके उतना ही होता है तथा मुखों को चमडे से मढा जाता है। त्रिवली में लोहे के वलयों को लगाया जाता है, जिन पर सात छेद होते है। इनमें डोरियों को बांधा जाता है, इसमें एक हाथ लम्बी सूत की डोरी लगायी जाती है, जिसे कंधें पर धारण कर वादन किया जाता है। इस प्रकार त्रिवली को पं० शारंगदेव जी द्वारा कहा गया है।

4.3.4.20 दुन्दुभि

श्लोक–1147–1149 दुन्दुभि आम के पेड़ की लकडी द्वारा बनाया जाता है। यह आकार में बड़ा होता है तथा ध्वनि भी विशाल कही गयी है। दुन्दुभि का भीतरी भाग कांसे के पात्रों के समूह से निर्मित होता है तथा मुख चमडें से अक्षादित किया जाता है तथा चारों ओर चमड़े की डोरियों अर्थात् बद्धियों को बांधा जाता है। चमड़े के मोटे कोण द्वारा देन्दुभि के वादन से वर्णों की उत्पत्ति होती है। दुन्दुभि का वादन शुभ, मंगल अवसरों, विजय प्राप्ती तथा मंदिरों आदि में होती है।

4.3.4.21 भेरी

श्लोक–1150–1152 भेरी तीन वितस्ति लम्बी होती है तथा तांबें के द्वारा निर्माण किया जाता है। चौबिस–चौबिस अंगुल के दोनों मुख होते है, जो कडें से युक्त होते है तथा छेदों वाले चमड़े से मुखों को मढ़ा जाता है। सूत की डोरी को मध्य में डालकर मजबूती से बांधा जाता है, जो एक नियंत्रक के रूप में कार्य करती है। मध्य भाग में सूत की डोरी को बांधा जाता है। दांए हाथ में कोण धारण कर प्रहार करने से गम्भीर, भय उत्पन्न करने वाली भारी नाद की ध्वनि की उत्पत्ति होती है। तंकार को पं० शारंगदेव जी द्वारा मुख्य पाट वर्ण कहा है।

4.3.4.22 निःसाण

श्लोक– 1153–1157 निःसाण का निर्माण लोहे या तांबें से किया जाता है। यह उत्तम मध्यम तथा अधम का होता है। एक मुख से युक्त वाद्य है, इसका मुख बड़ा होता है तथा नीचे से छोटा होता है अर्थात् आधे जौ जैसे आकार का वाद्य होता है। निःसाण के भीतर कांसे को

गर्भ में भार हेतु भरा जाता है तथा भैंसें के चमडे से मुख को ढ़का जाता है। चमड़े में जो छेद किए जाते है, उसमें कड़े को रख बद्धियों को दोहराकर बांधा जाता है। ध्वनि अत्यंत भय को उत्पन्न करने वाली होती है तथा पं० शारंगदेव जी द्वारा कहा गया है कि चमड़े को कोण द्वारा बजाया जाता है, जो विशाल ध्वनि का सृजन करता है, जो वीरों को युद्ध में रोमांच से परिपूर्ण कर देती है।

4.3.4.23 तुम्बकी

श्लोक निःसाण के जैसे ही गुणों, लक्षणों, शरीर तथा नाद से कुछ कम को तुम्बकी कहा गया है।

4.3.4.24 काष्ठलक्षणम्

श्लोक–1157–1165 प्रस्तुत श्लोकों में काष्ठ अर्थात् लकडी के लक्षणों को पं० शारंगदेव जी द्वारा कहा गया है कि वर्णित हो या न हो, वाद्य निर्माण हेतु खैर या रक्त चन्दन अर्थात् लाल चन्दन की लकड़ी को ही उत्तम माना जाता है। इसके अतिरिक्त वाद्य निर्माण हेतु, सूखे स्थान की पुरानी तथा हवा के वेग से जो वृक्ष अंदोलित हो जाते है, उन वृक्षों को ही खोखला कर भीतरी भाग का निर्माण करना चाहिए तथा वृक्षों की जाति का वर्णन किया है, जिसमें पित्तला, वातला तथा श्लेष्मला तीन जातियों को वर्णित किया गया है। पित्तला सूखे स्थान पर उगाए जाते है। वातला न्यूनतम नमी वाले स्थान के वृक्षों को कहा जाता है तथा श्लेष्मला जाति के वृक्ष जलाश्यों के पास की भूमि पर पाए जाते है, जिसमें पित्तला को श्रेष्ठ अर्थात् उत्तम, वातला को अधम तथा श्लेष्मला जाति की लकड़ी को वाद्य निर्माण हेतु वर्जित कहा है तथा सूखे हुए वृक्ष को भी वर्जित कहा है। इस प्रकार अन्य भी कई काष्ठ गुण पं० शारंगदेव द्वारा वर्णित किए गए है तथा अन्त में दोषपूर्ण तथा कोमल लकड़ी को काष्ठ दोष के रूप में व्यक्त किया गया है।

4.3.4.25 चमड़े के गुण

श्लोल– 1166–1169 अवनद्ध वाद्यों के मुख को अक्षादित करने हेतु, छः माह के बछडें के चमड़े को उत्तम माना गया है। अन्य आचार्यों द्वारा दो वर्ष के बछडें के चमडे के प्रयोग को कहा है। बूढ़े बैल के चमड़े द्वारा बद्धियों का निर्माण किया जाता है। चमड़े के गुण को वर्णित

करते हुए कहा हुए कहा है, कि कुन्द के फूल, चन्द्रमा तथा बर्फ के समान चमकता हुआ व आम के छोटे पत्तों के समान कोमल तथा मांस–पेशियों व नाडियों से रहित चमड़े शुद्ध चमड़े को एक रात पूर्व ठंडें पानी में भिगोकर उससे मढ़ा जाता है।

इस प्रकार पं० शारंगदेव जी द्वारा चमड़े के गुण कहे गए है। चर्बी से युक्त, बूढा, गीला, कटा–फटा तथा पुराने चमड़े को दोषपूर्ण चमड़ा कहा गया है।

श्लोक– 1170 इस प्रकार पं० शारंगदेव जी द्वारा अवनद्ध वाद्य का सम्पूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

4.3.5 घन वाद्य

श्लोक– 1171 अवनद्ध वाद्यों के पश्चात् घन वाद्यों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है, जो इस प्रकार है। घन वाद्य कांसे द्वारा निर्मित होते है, वाद्य निर्माण हेतु कांसे को अग्नि में शुद्व करकें प्रयोग किया जाता है।

4.3.5.1 ताल

श्लोक– 1172–1182 ताल का निर्माण कांसें द्वारा होता है, जिसके लिए कांसें को गोल आकृति दी जाती है। सवा दो अंगुल की नाप का मुंह होता है तथा मध्य भाग एक अंगुल चौडा होता है। नीचें तथा मध्य में छेद होते है, जो पौन अंगुल को गुन्जा के बराबर होता है। एक यव के समान मोटाई रखी जाती है तथा ऊंचाई ड़ेढ़ अंगुल होती है। इसी प्रकार समान, मनोहर, चिकनी आकृति का ही होना चाहिए। जिससे उत्तम नाद की उत्पत्ति होती है। ताल का वर्तमान रूप मंजीरा को कहा गया है। इस प्रकार एक समान दो ताल बनाकर एक ही डोरी में डाले जाते है व वादन हेतु दोनों तालों को तर्जनी व अंगूठे से पकड़ कर आधे तथा तिरछे मुंह के साथ आपस में आघात किया जाता है।

जिससे नाद ध्वनि की उत्पत्ति होती है, यह नाद शिव का होता है, बांए ताल के उत्पन्न नाद को शक्ति तथा दांए ताल से उत्पन्न नाद को शिव कहा है। इस वाद्य को धारण करने मात्र से अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त होता है। ताल का प्रयोग मापन क्रिया में किया जाता है। इस प्रकार पं० शारंगदेव जी द्वारा ताल का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

4.3.5.2 कास्यताल

श्लोक– 1183–1184 कास्यताल कमल के पत्तों के आकार का कास्य निर्मित घन वाद्य है। जोडे में कास्यताल का वादन होता है। मुख तेरह अंगुल का होता है तथा नीचे का तल दो अंगुल का होता है व मध्य भाग एक अंगुल का होता है। अन्य शेष लक्षण ताल के समान ही कहे है। पं० शारंगदेव जी वर्णित कास्यताल के देवता नारद कहे गए है।

4.3.5.3 घटां

श्लोक– 1185–1188 घंटा आधा अंगुल मोटा होता है तथा कांसें का बना होता है। ऊँचाई आठ अंगुल हांती है, जो मुहं की ओर बड़ा व मूल की ओर जाते हुए सकरा होता जाता है। घण्टा अधिकतर मन्दिरों आदि में देखा जा सकता है। घण्टा के मध्य भाग में एक लोहे का दोलक लगा होता है, जिसके माध्यम से वादन होता है तथा इसकी लम्बाई लगभग ड़ेढ अंगुल होती है। घण्टा के देवता समस्त देवताओं को कहा गया है।

4.3.5.4 क्षुद्रघंटिका

श्लोक– 1189–1191 यह भी कांसें द्वारा निर्मित होते है। यह आकार में छोटे–छोटे गोल होते है, जो खोखले होते है। भीतर लेहे की बनी गोलियां अन्दर खोखले स्थान पर रखी जाती है। जिसके माध्यम से नाद उत्पन्न होता है। इस प्रकार कई सारी क्षुद्रघण्टिकाओं को एक डोर में पिरोकर नृत्यांगनाओं द्वारा नृत्य का प्रस्तुतीकरण किया जाता है।

4.3.5.5 जयघण्टा

श्लोक–1192–1193 कांसें द्वारा निर्मित घन वाद्य है। यह एक हाथ लम्बा तथा आधे अंगुल मोटी होती है तथा ठोस चिकनी व आकार में गोल होती है। सिर पर दो छेद होते है, इन्हीं छेदों में डोरी को डाला जाता है। जयघंटा को बांए हाथ में धारणकर दांए हाथ में कोण को धारण कर वादन किया जाता है। पं० शारंगदेव द्वारा इसका पाट वर्ण डंकार कहा गया है। वर्तमान में जयघण्टा नामक वाद्य मन्दिरों आदि में प्रयोग किया जाता है।

4.3.5.6 क्रमा– श्लोक–1194–1199 क्रमा खैर या ठोस बांस द्वारा निर्मित होता है। यह चार समूहों में प्रयुक्त किया जाता है तथा दो अंगुल चौड़ा व लम्बाई में बारह अंगुल का होता है

तथा मध्य भाग की मोटाई उसी के अनुरूप रखी जाती है तथा दोनों सिरे कुछ कम होते है। वर्तमान में यह लोकवाद्य के रूप में प्रयुक्त होता है तथा खड़ताल नाम से भी जाना जाता है, जो राजस्थान में प्रयोग किया जाता है।

4.3.5.7 शुक्ति

श्लोक–1200–1202 शुक्ति एक सांप के आकार का कांसें या लोहे द्वारा निर्मित होती है। यह तीन अंगुल चौड़ी होती है तथा ढाई हाथ लम्बी होती है। इसे आड़ी रेखाओं द्वारा शोभित किया जाता है तथा वादन हेतु लोहे के कोण को घिसा जाता है, जिससे किरिकिट्ट नामक वर्णों की उत्पत्ति होती है। यक्ष को शुक्ति के देवता के रूप में स्वीकारा गया है। इस प्रकार पं० शारंगदेव जी द्वारा शुक्ति को कहा गया है।

4.3.5.8 पट्ट

श्लोक– 1203–1207 पट्ट बेत की लकड़ी का बना वाद्य है, जिसमें चार कोने होते है अर्थात् आयताकार वाद्य है। पट्ट बत्तिस अंगुल लम्बा वाद्य है तथा अन्य आचार्यों द्वारा तीस अंगुल लम्बे वाद्य के रूप में वर्णित किया गया है तथा एक हाथ चौड़ा होता है। पट्ट के ऊपर तथा नीचे की ओर तिहरी करके रस्सीनुमा दो लोहे की सारिकाओं को स्थापित किया जाता है, जो छोटे छल्लों सी प्रतीत होती है। अग्र भाग अर्थात् छाती या गोद में रखकर वादन किया जाता है। पट्ट के देवता सप्त–ऋषियों को पं० शारंगदेव जी द्वारा माना गया है।

इस प्रकार पं० शारंगदेव जी द्वारा घन वाद्यों का वर्णन संगीत रत्नाकर में प्रस्तुत किया गया है। इसके पश्चात् वाद्य तथा वादक के गुण–दोषों को वर्णित किया गया है।

4.3.5.9 गुण एंव दोष

श्लोक–1209–1214 कर्णप्रिय ध्वनि, वाद्यों की संयुक्त मधुर ध्वनि, मधुर, शुद्ध व नियमानुसार वाद्य निमार्ण, गीत अनुकरण से रंजकता पूर्ण, गम्भीर ध्वनि, प्रहार या आघात से स्वरों की स्पष्ट निकासी, कंठ के समान गूंजित मनोहर ध्वनि, रन्जकता से परिपूर्ण ध्वनि को गुणों को वयाख्यित किया गया है। इन्हीं गुणों के विपरीत रूपों को दोष कहा गया है, तथा अन्य सभी गुण–दोष गायन के ही समान माने जाते है।

4.3.5.10 वादक के गुण एंव दोष

श्लोक–1215–1219 वादक के गुण वर्णित करते हुए कहा है, कि हस्त प्रहार को सही ढंग से प्रस्तुत करता हो, गायन के अनुरूप, वादन प्रस्तुत करने वाला हो, ताल, यति, लय का ज्ञाता हो, पाटों की जानकारी हो, अवनद्ध के पांचों संचों का ज्ञाता, हस्त के समस्त गुणों से परिपूर्ण वाद्य की ध्वनि का ज्ञाता तथा गायन तथा नृत्य में होने वाली भूलों को मंच में छिपाने में सक्षम आदि कई एक उत्तम वादक के गुण कहे गए है। दोष सदैव गुणों के विपरीत ही जानने चाहिए।

4.3.5.11 वादक के हस्त गुण

श्लोक– 1220–1221 इसी प्रकार वादक के हस्त गुणों को वर्णित किया गया है। वादक उत्तम अनुसरणकर्ता, दृढ़ स्वष्ट तथा कुशल अंगुलियों के संचालन वाला होना चाहिए। इस प्रकार संगीत रत्नाकर के वाद्यध्याय को पं० शारंगदेव जी द्वारा वर्णित किया गया है, जिसमें वाद्य शब्द से लेकर वादक के हस्त गुणों तक होने वाली, प्रत्येक क्रियाओं का सम्पूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया गया है। संगीत रत्नाकर जो एक संगीत का महान ग्रन्थ के रूप में जाना जाता है, उसका यह वाद्याध्याय शोध प्रबन्ध की आवश्यकता अनुसार ही शोधार्थी द्वारा वर्णित करने का प्रयास किया गया है।

निष्कर्ष– शोधप्रबन्ध के प्रस्तुत अध्याय के अर्न्तगत वाद्य शब्द तथा वर्तमान वाद्य वर्गीकरण को प्रस्तुत करते हुए। संगीत रत्नाकर वर्णित वाद्याध्याय को संक्षिप्त रूप से शोधार्थी द्वारा, इस शोध प्रबन्ध की आवश्यकता के अनुरूप प्रस्तुत किया गया है। वाद्य वर्गीकरण के अर्न्तगत तत्, सुषिर, अवनद्ध तथा घन वाद्यों को व्याख्यित किया गया है। इसके पश्चात् संगीत रत्नाकर वर्णित वाद्यध्याय को वर्णित किया गया है। वाद्याध्याय के अर्न्तगत 1221 श्लोकों प्राप्त होते है, जिसमें सम्पूर्ण वाद्य वर्गीकरण, वाद्यों का विस्तृत वर्णन पं० शारंगदेव जी द्वारा कहा गया है। संगीत रत्नाकर के वाद्याध्याय में मंगलाचरण के पश्चात् वाद्य निरूमण तथा वर्गीकरण को कहा गया है, जिसमें तत्, सुषिर अवनद्ध तथा अन्त में घन वाद्यों को वर्णित किया गया है। वाद्याध्याय के अर्न्तगत दस तन्त्री वाद्यों जिनमें एकतंत्री वीणा, नकुल वीणा, त्रितन्त्री वीणा, विपंची वीणा, चित्रा वीणा, मत्तकोकिला वीणा, किन्नरी वीणा, पिनाकी वीणा तथा निःशंक वीणा को कहा गया है, इसके पश्चात् सुषिर वाद्यों को कहा है, जिनके नाम वंश,

पाव, पाविका, मुरली, मधुकरी काहला, तुण्डकिनी, चुक्का, श्रृंग,शंख प्राप्त होते है। साथ ही वंश को मुख्य वाद्य के रूप में वर्णित करते हुए, आकार के अनुसार वंश के पन्द्रह भेदों को पं० शारंगदेव जी द्वारा कहा गया है। अवनद्ध वाद्यों को वर्णित करते हुए पटह को वर्णित दो भेंद पटह के कहे गए है। मार्गी पटह तथा देशी पटह। तत्पश्चात् कुल **23** अवनद्ध वाद्यों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है व सभी वाद्यों का वर्णन वादन लक्षण, वाद्य निर्माण विधि आदि को कहा गया है। संगीत रत्नाकर वर्णित पटह के अतिरिक्त अन्य अवनद्ध वाद्य मर्दल, हुडुक्का, करटा, घट, घडस, ढ़वस, ढ़क्का, कुडुक्का, कुडुवा, रूंजा, डमरूक, डक्का, मणिडडक्का, ड़क्कुली, सेल्लुका झल्लरी, भाण, त्रिवली, दुन्दुभि, भेरी, निःसाण नाम से वर्णित किए गए है। अन्त में घन वाद्यों को कहा गया है। जिसमें आठ प्रकार के घन वाद्यों ताल, कास्यताल, घटां, क्षुद्रघंटिका, जयघण्टा, क्रमा, शुक्ति, पट्ट का वर्णन किया गया है। साथ ही उनकें लक्षणों को कहा है।

इस प्रकार शोधार्थी द्वारा सम्पूर्ण वाद्याध्याय को वर्णित किया गया है, साथ ही अध्ययन द्वारा भारतीय संस्कृति की अनमोल धरोहर पर गर्व को महसूस किया जा सकता है, कि कितनी अमूल्य संस्कृति को ऋषि–मुनियों व विद्वानों द्वारा भारतीय संगीत को भेंट की गयी है व यह भी ज्ञात होता है कि प्राचीन वाद्य ही वर्तमान वाद्यों की मूल संरचना है।

****